श्रीयोगवशिष्ठ प्रथम वैराग्य प्रकरण

अनुक्रम

श्रीयोगवशिष्ठ प्रथम वैराग्य प्रकरण प्रारम्भ

उस सत्चित् आनन्दरूप आत्मा को नमस्कार है जिससे सब भासते हैं और जिसमें सब लीन और स्थिर होते हैं एवं जिससे ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य और कर्ता, करण, कर्म सिद्ध होते हैं, जिस आनन्द के समुद्र के कण से सम्पूर्ण विश्व आनन्दवान् है और जिस आनन्द से सब जीव जीते हैं ।

अगस्त्यजी के शिष्य सुतीक्ष्ण के मन में एक संशय उत्पन्न हुआ तब वह उसके निवृत्त करने के अर्थ अगस्त्य मुनि के आश्रम में जाकर विधिसंयुक्त प्रणाम करके स्थित हुआ और नम्रता पूर्वक प्रश्न किया कि:

हे भगवान्! आप सर्वतत्त्वज्ञ और सर्व शास्त्रों के ज्ञाता हो एक संशय मुझको है सो कृपा करके निवृत्त करो । मोक्ष का कारण कर्म है या ज्ञान? अथवा दोनों?

इतना सुन अगस्त्यजी बोले कि हे ब्रह्मण्य! केवल कर्म मोक्ष का कारण नहीं और केवल ज्ञान से भी मोक्ष प्राप्त नहीं होता; मोक्ष की प्राप्ति दोनों से ही होती है । कर्म करने से अन्तःकरण शुद्ध होता है, मोक्ष नहीं होता और अतःकरण की शुद्धि के बिना केवल ज्ञान से भी मुक्ति नहीं होती; इससे दोनों से मोक्ष की सिद्धि होती है । कर्म करने से अतःकरण शुद्ध होता है, फिर ज्ञान उपजता है और तब मोक्ष होता है । जैसे दोनों पंखों से पक्षी आकाश मार्ग में सुख से उड़ता है वैसे ही कर्म और ज्ञान दोनों से मोक्ष की प्राप्ति होती है । हे ब्रह्मण्य! इसी आशय के अनुसार एक पुरातन इतिहास है वह तुम सुनो ।

अग्निवेष का पुत्र कारण नाम ब्राहमण गुरु के निकट जा षट् अंगों सहित चारों वेद अध्ययन करके गृह में आया और कर्म से रहित होकर तूष्णीं हो स्थित रहा अर्थात संशययुक्त हो कर्मोंसे रहित हुआ ।

जब उसके पिता ने देखा कि यह कर्मों से रहित हो गया है तो उससे कहा कि हे पुत्र! तुम कर्म क्यों नहीं करते? तुम कर्म के न करने से सिद्धता को कैसे प्राप्त होगे? जिस कारण तुम कर्म से रहित हुए हो वह कारण कहो? कारण बोला: हे पिता! मुझको एक संशय उत्पन्न हुआ है इसलिये कर्म से निवृत्त हुआ हूँ । वेद में एक ठौर तो कहा है कि जब तक जीता रहे तब तक कर्म अर्थात् अग्निहोत्रादिक करता रहे और एक ठौर कहा है कि न धन से मोक्ष होता है न कर्म से मोक्ष होता है, न पुत्रादिक से मोक्ष होता है और न केवल त्याग से ही मोक्ष होता है । इन दोनों में क्या कर्तव्य है मुझको यही संशय है सो आप कृपा करके निवृत्त करो और बतलाओ कि क्या कर्त्तव्य है?

अगस्त्यजी बोले हे सुतीक्ष्ण! जब कारण ने पिता से ऐसा कहा तब अग्निवेष बोले कि: हे पुत्र! एक कथा जो पहले हुई है उसको सुनकर हृदय में धारण कर फिर जो तेरी इच्छा हो सो करना । एक काल में सुरुचि नामक अप्सरा, जो सम्पूर्ण अप्सराओं में उत्तम थी, हिमालय पर्वत के सुन्दर शिखर पर जहाँ कि देवता और किन्नरगण, जिनके हृदय कामना से तृप्त थे, अप्सराओं के साथ क्रीड़ा करते थे और जहाँ गंगाजी के पवित्र जल का प्रवाह लहर ले रहा था, बैठी थी । उसने इन्द्र का एक दूत अन्तरिक्ष से चला आता देखा और जब निकट आया तो उससे पूछा: अहो भाग्य, देवदूत! तुम देवगणों में श्रेष्ठ हो; कहाँ से आये हो और अब कहाँ जाओगे सो कृपा करके कहो?

देवदूत बोला: हे सुभद्रे! अरिष्टनेमि नामक एक धर्मात्मा राजर्षि ने अपने पुत्र को राज्य देकर वैराग्य लिया और सम्पूर्ण विषयों की अभिलाषा त्याग करके गन्धमादन पर्वत में जा तप करने लगा । उसी से मेरा एक कार्य था और उस कार्य के लिये मैं उसके पास गया था । अब इन्द्र के पास, जिसका मैं दूत हूँ, सम्पूर्ण वृत्तान्त निवेदन करने को जाता हूँ ।

अप्सरा ने पूछा: हे भगवान्! वह वृत्तान्त कौनसा है मुझसे कहो? मुझको तुम अतिप्रिय हो यह जानकर पूछती हूँ । महापुरुषों से जो कोई प्रश्न करता है तो वे उद्वेगरहित होकर उत्तर देते हैं । देवदूत बोला: हे भद्रे! वह वृत्तान्त मैं विस्तारपूर्वक तुमसे कहता हूँ मन लगाकर सुनो ।

जब उस राजा ने गन्धमादन पर्वत पर बड़ा तप किया तब देवताओं के राजा इन्द्र ने मुझको बुलाकर आज्ञा दी कि: हे दूत! तुम गन्धमादन पर्वत पर जो नाना प्रकार की लताओं और वृक्षों से पूर्ण है, विमान, अप्सरा और नाना प्रकार की सामग्री एवं गन्धर्व, यक्ष, सिद्ध, किन्नर, ताल, मृदङ्गादि वादित्र संग ले जाकर राजा को विमान पर बैठा के यहाँ ले

आओ । तब मैं विमान और सामग्री सहित जहाँ राजा था आया और राजा से कहा: हे राजन! तुम्हारे कारण विमान ले आया हूँ; इस पर आरूढ़ होकर तुम स्वर्ग को चलो और देवताओं के भोग भोगो ।

इतना सुन राजा ने कहा कि: हे दूत! प्रथम तुम स्वर्ग का वृत्तान्त मुझे सुनाओ कि तुम्हारे स्वर्ग में क्या-क्या दोष और गुण हैं तो उनको सुनके मैं हृदयमें विचारूँ । पीछे जो मेरी इच्छा होगी तो चलूँगा । मैंने कहा कि हे राजन्! स्वर्ग में बड़े-बड़े दिव्य भोग हैं । जीव बड़े पुण्य से स्वर्ग को पाता है । जो बड़े पुण्यवाले होते हैं वे स्वर्ग के उत्तम सुख को पाते हैं; जो मध्यम पुण्यवाले हैं वे स्वर्ग के मध्यम सुख को पाते हैं और जो कनिष्ठ पुण्यवाले हैं वे स्वर्ग के कनिष्ठ सुख को पाते हैं । जो गुण स्वर्ग में हैं वे तो तुमसे कहे, अब स्वर्ग के जो दोष हैं वे भी सुनो । हे राजन्! जो आपसे ऊँचे बैठे दृष्ट आते हैं और उत्तम सुख भोगते हैं उनको देखकर ताप की उत्पत्ति होती है क्योंकि उनकी उत्कृष्टता सही नहीं जाती । जो कोई अपने समान सुख भोगते हैं उनको देखकर क्रोध उपजता है कि ये मेरे समान क्यों बैठे है और जो आपसे नीचे बैठे हैं उनको देखकर अभिमान उपजता है कि मैं इनसे श्रेष्ठ हूँ । एक और भी दोष है कि जब पुण्य क्षीण होते हैं तब जीव को उसी काल में मृत्युलोक में गिरा देते हैं, एक क्षण भी नहीं रहने देते । यही स्वर्ग में गुण और दोष हैं । हे भद्रे! जब इस प्रकार मैंने राजा से कहा तो राजा बोला कि हे देवदूत! उस स्वर्ग के योग्य हम नहीं हैं और हमको उसकी इच्छा भी नहीं है । जैसे सर्प अपनी त्वचा को पुरातन जानकर त्याग देता है वैसे ही हम उग्र तप करके यह देह त्याग देंगे । हे देवदूत! तुम अपने विमान को जहाँ से लाये हो वहीं ले जाओ, हमारा नमस्कार है ।

हे देवि! जब इस प्रकार राजा ने मुझसे कहा तब मैं विमान और अप्सरा आदि सबको लेकर स्वर्ग को गया और सम्पूर्ण वृत्तान्त इन्द्र से कहा । इन्द्र बहुत प्रसन्न हुआ और सुन्दर वाणी से मुझसे बोला कि: हे दूत! तुम फिर जहाँ राजा है वहाँ जाओ । वह संसार से उपराम हुआ है । उसको अब आत्मपद की इच्छा हुई है इसलिये तुम उसको अपने साथ वाल्मीकिजी के पास , जिसने आत्मतत्त्व को आत्माकार जाना है, ले जाकर मेरा यह सन्देशा देना कि हे महाऋषे! इस राजा को तत्त्वबोध का उपदेश करना क्योंकि यह बोध का अधिकारी है । इसको स्वर्ग तथा और पदार्थों भी इच्छा नहीं, इससे तुम इसको तत्त्व बोध का उपदेश करो और यह तत्त्वबोध को पाकर संसारदुःख से मुक्त हो ।

हे सुभद्रे! जब इस प्रकार देवराज ने मुझसे कहा तब मैं वहाँ से चलकर राजाके निकट आया और उससे कहा कि हे राजन्! तुम संसारसमुद्र से मोक्ष होने के निमित्त वाल्मीकिजी के पास चलो; वे तुमको उपदेश करेंगे । उसको साथ लेकर मैं वाल्मीकिजी स्थान पर आया और उस स्थान में राजा को बैठा और प्रणामकर इन्द्र का सन्देशा दिया । तब वाल्मीकिजी ने कहा: हे राजन् कुशल तो है? राजा बोले, हे भगवान्! आप

परमतत्त्वज्ञ और वेदान्त जाननेवालों में श्रेष्ठ हैं, मैं आपके दर्शन करके कृतार्थ हुआ और अब मुझको कुशलता प्राप्त हुई है । मैं आपसे पूछता हूँ कृपा करके उत्तर दीजिए कि संसार बन्धन से कैसे मुक्ति हो?

इतना सुन वाल्मीकिजी बोले हे राजन! महारामायण औषध तुमसे कहता हूँ उसको सुनके उसका तात्पर्य हृदय में धारने का यत्न करना । जब तात्पर्य हृदय में धारोगे तब जीवन्मुक्त होकर बिचरोगे । हे राजन् वह वशिष्ठजी और रामचन्द्रजी का संवाद है और उसमें, मोक्ष का उपाय कहा है । उसको सुन कर जैसे रामचन्द्रजी अपने स्वभाव में स्थित हुए और जीवन्मुक्त होकर बिचरे हैं वैसे ही तुम भी बिचरोगे ।

राजा बोले: हे भगवान्! रामचन्द्रजी कौन थे कैसे थे और कैसे होकर बिचरे सो कृपा करके कहो?

वाल्मीकिजी बोले, हे राजन्! शाप के वश से सच्चिदानन्द विष्णुजी ने जो अद्वैत ज्ञान से सम्पन्न हैं, अज्ञान को अंगीकार करके मनुष्य का शरीर धारण किया । इतना सुन राजा ने पूछा, हे भगवान्! चिदानन्द हरि को शाप किस कारण हुआ और किसने दिया सो कहो?

वाल्मीकिजी बोले, हे राजन्! एक काल में सनत्कुमार, जो निष्काम हैं, ब्रह्मपुरी में बैठे थे और त्रिलोक के पति विष्णु भगवान् भी वैकुण्ठ से उतरकर ब्रह्मपुरी में आये । तब ब्रह्मा सहित सर्वसभा उठकर खड़ी हुई और श्रीभगवान् का पूजन किया, पर सनत्कुमार ने पूजन नहीं किया । इस बात को देखकर विष्णु भगवान् बोले कि हे सनत्कुमार! तुमको निष्कामता का अभिमान है इससे तुम काम से आतुर होगे और स्वामि-कार्तिक तुम्हारा नाम होगा । सनत्कुमार बोले, हे विष्णो! सर्वज्ञता का अभिमान तुमको भी है, इसलिये कुछ काल के लिए तुम्हारी सर्वज्ञता निवृत्त होकर अज्ञानता प्राप्त होगी । हे राजन्! एक तो यह शाप हुआ, दूसरा एक और भी शाप है, सुनो । एक काल में भृगु की स्त्री जाती रही थी । उसके वियोग से वह ऋषि क्रोधित हुआ था उसको देखकर विष्णुजी हँसे तब भृगु ब्राह्मण ने शाप दिया कि हे विष्णो!मेरी तुमने हँसी की है सो मेरी नाई तुम भी स्त्री के वियोग से आतुर होगे । और एक दिवस देवशर्मा ब्राह्मण ने नरसिंह भगवान् को शाप दिया था सो भी सुनिये । एक दिन नरसिंह भगवान् गंगा के तीर पर गये और वहाँ देवशर्मा ब्राह्मण की स्त्री को देखकर नरसिंहजी भयानक रूप दिखाकर हँसे । निदान उनको देखकर ऋषि की स्त्री ने भय पाय प्राण छोड़ दिया । तब देवशर्मा ने शाप दिया कि तुमने मेरी स्त्री का वियोग किया, इससे तुम भी स्त्री का वियोग पावोगे । हे राजन् सनतकुमार भृगु और देवशर्मा के शाप से विष्णु भगवान् ने मनुष्य का शरीर धारण किया और राजा दशरथ के घर में प्रकटे । हे राजन्! वह जो शरीर धारण किया और आगे जो वृत्तान्त हुआ सो सावधान होकर सुनो । अनुभवात्मक मेरा आत्मा जो

त्रिलोकी अर्थात् स्वर्ग, मृत्यु, और पाताल का प्रकाशकर्त्ता और भीतर बाहर आत्मतत्त्व से पूर्ण है उस सर्वात्मा को नमस्कार है । हे राजन! यह शास्त्र जो आरम्भ किया है इसका विषय, प्रयोजन और सम्बन्ध क्या है और अधिकारी कौन है सो सुनो ।

यह शास्त्र सत्-चित्त आनन्दरूप अचिन्त्यचिन्मात्र आत्मा को जताता है यह तो विषय है, परमानन्द आत्मा की प्राप्ति और अनात्म अभिमान दुःख की निवृत्ति प्रयोजन है और ब्रह्मविद्या और मोक्ष उपाय से आत्मपद प्रतिपादन सम्बन्ध है जिसको यह निश्चय है कि मैं अद्वैत-ब्रह्म अनात्मदेह से बाँधा हुआ हूँ सो किसी प्रकार छूटूँ वह न अति ज्ञानवान् है, न मूर्ख है, ऐसा विकृति आत्मा यहाँ अधिकारी है । यह शास्त्र मोक्ष (परमानन्द की प्राप्ति) करनेवाला है । जो पुरुष इसको विचारेगा वह ज्ञानवान् होकर फिर जन्ममृत्युरूप संसार में न आवेगा । हे राजन! यह महारामायण पावन है । श्रवण मात्र से ही सब पाप का नाशकर्त्ता है जिसमें रामकथा है । यह मैंने प्रथम अपने शिष्य भारद्वाज को सुनाई थी ।

एक समय भारद्वाज चित्त को एकाग्र करके मेरे पास आये और मैंने उसको उपदेश किया था । वह उसको सुनकर वचनरूपी समुद्र से साररूपी रत्न निकाल और हृदयमें धरकर एक समय सुमेरु पर्वत पर गया । वहाँ ब्रह्माजी बैठे थे, उसने उनको प्रणाम किया और उनके पास बैठकर यह कथा सुनाई । तब ब्रह्माजी ने प्रसन्न होकर उससे कहा, हे पुत्र! कुछ वर माँग; मैं तुझ पर प्रसन्न हुआ हूँ । भारद्वाज ने, जिसका उदार आशय था, उनसे कहा, हे भूत-भविष्य के ईश्वर! जो तुम प्रसन्न हुए हो, तो यह वर दो कि सम्पूर्ण जीव संसार-सुख से मुक्त हों और परमपद पावें और उसी का उपाय भी कहो । ब्रह्माजी ने कहा, हे पुत्र! तुम अपने गुरु वाल्मीकिजी के पास जाओ । उसने आत्मबोध महारामायण शास्त्र का जो परमपावन संसार समुद्र के तरने का पुल है, आरम्भ किया है । उसको सुनकर जीव महामोहजनक संसार समुद्र से तरेंगे । निदान परमेष्ठी ब्रह्मा जिनकी सर्वभूतों के हित में प्रीति है आप ही, भारद्वाज को साथ लेकर मेरे आश्रम में आये और मैंने भले प्रकार से उनका पूजन किया । उन्होंने मुझसे कहा, हे मुनियोंमें श्रेष्ठ वाल्मीकि! यह जो तुमने रामके स्वभाव के कथन का आरम्भ किया है इस उद्यम का त्याग न करना; इसकी आदि से अन्त पर्यन्त समाप्ति करना; क्योंकि यह मोक्ष उपाय संसार रूपी समुद्र के पार करने का जहाज और इससे सब जीव कृतार्थ होंगे ।

इतना कहकर ब्रह्माजी, जैसे समुद्र से चक्र एक मुहूर्त पर्यन्त उठके फिर लीन हो जावे वैसे ही अन्तर्द्धान हो गये । तब मैंने भारद्वाज से कहा, हे पुत्र! ब्रह्माजी ने क्या कहा? भारद्वाज बोले हे भगवान्! ब्रह्माजी ने तुमसे यह कहा कि हे मुनियों में श्रेष्ठ! यह जो तुमने राम के स्वभावके कथन का उद्यम किया है उसका त्याग न करना; इसे अन्तपर्यन्त समाप्तिकरना क्योंकि; संसारसमुद्र के पार करने को यह कथा जहाज है और

इससे अनेक जीव कृतार्थ होकर संसार संकट से मुक्त होंगे । इतना कह कर फिर वाल्मीकिजी बोले हे राजन! जब इस प्रकार ब्रह्माजीने मुझसे कहा तब उनकी आज्ञानुसार मैंने ग्रन्थ बनाकर भारद्वाज को सुनाया । हे पुत्र! वशिष्ठजी के उपदेश को पाकर जिस प्रकार रामजी निश्शंक हो बिचरे हैं वैसे ही तुम भी बिचरो । तब उसने प्रश्न किया कि हे भगवान्! जिस प्रकार रामचन्द्रजी जीवन्मुक्त होकर बिचरे वह आदि से क्रम करके मुझसे कहिये? वाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! रामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न, सीता,कौशल्या, सुमित्रा और दशरथ ये आठ तो जीवन्मुक्त हुए हैं और आठ मन्त्री अष्टगण वशिष्ठ और वामदेव से आदि अष्टाविंशति जीवन्मुक्त हो बिचरे हैं उनके नाम सुनो । रामजी से लेकर दशरथपर्यन्त आठ तो ये कृतार्थ होकर परम बोधवान् हुए हैं और १ कुन्तभासी, २ शतवर्धन, ३ सुखधाम, ४ विभीषण, ५ इन्द्रजीत्, ६ हनुमान ७ वशिष्ठ और ८ वामदेव ये अष्टमन्त्री निश्शंक हो चेष्टा करते भये और सदा अद्‌वैत-निष्ठ हुए हैं । इनको कदाचित् स्वरूप से द्‌वैतभाव नहीं फुरा है । ये अनामय पद की स्थिति में तृप्त रहकर केवल चिन्मात्र शुद्‌धपर परमपावनता को प्राप्त हुए हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणेकथारम्भवर्णनो नाम प्रथमस्सर्गः ॥१॥

अनुक्रम

तीर्थयात्रावर्णन

भारद्‌वाज ने पूछा हे भगवान्! जीवन्मुक्त की स्थिति कैसी है और रामजी कैसे जीवन्मुक्त हुए हैं वह आदि से अन्तपर्यन्त सब कहो? वाल्मीकिजी बोले, हे पुत्र! यह जगत् जो भासता है सो वास्तविक कुछ नहीं उत्पन्न हुआ; अविचार करके भासता है और विचार करने से निवृत्त हो जाता है । जैसे आकाश में नीलता भासती है सो भ्रम से वैसे ही है यदि विचार करके देखिए तो नीलता की प्रतीति दूर हो जाती है वैसे ही अविचार से जगत भासता है और विचार से लीन हो जाता है । हे शिष्य! जब तक सृष्टि का अत्यन्त अभाव नहीं होता तब तक परमपद की प्राप्ति नहीं होती । जब दृश्य का अत्यन्त अभाव हो जावे तब शुद्‌ध चिदाकाश आत्मसत्ता भासेगी । कोई इस दृश्य का महाप्रलय में अभाव कहते हैं परन्तु मैं तुमको तीनों कालों का अभाव कहता हूँ । जब इस शास्त्र को श्रद्‌धासंयुक्त आदि से अन्त तक सुनकर धारण करे भ्रान्ति निवृत्ति हो जावे और अव्याकृत पद की प्राप्ति हो । हे शिष्य! संसार भ्रममात्र सिद्‌ध है । इसको भ्रममात्र जानकर विस्मरण करना यही मुक्ति है । जीव के बन्धन का कारण वासना है और

वासना से ही भटकता फिरता है । जब वासना का क्षय हो जाय तब परमपद की प्राप्ति हो! वासना का एक पुतला है उसका नाम मन है । जैसे जल सरदी की दृढ़ जड़ता पाकर बरफ हो जाता है और फिर सूर्य के ताप से पिघल कर जल होता है तो केवल शुद्ध ही रहता है वैसे ही आत्मा रूपी जल है उसमें संसार की सत्यतारूपी जड़ता शीतलता है और उससे मन रूपी बरफ का पुतला हुआ है । जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय होगा तब संसार की सत्यतारूपी जड़ता और शीतलता निवृत्त हो जावेगी । जब संसार की सत्यता और वासना निवृत्त हुई तब मन नष्ट हो जावेगा और जब मन नष्ट हुआ तो परम कल्याण हुआ । इससे इसके बन्धन का कारण वासना ही है और वासना के क्षय होने से मुक्ति है । वह वासना दो प्रकार की है- एक शुद्ध और दूसरी अशुद्ध । अशुद्धवासना से अपने वास्तविक स्वरूप के अज्ञान से अनात्मा को देहादिक हैं उनमें अहंकार करता है और जब अनात्म में आत्म अभिमान हुआ, तब नाना प्रकार की वासना उपजती हैं जिससे घटीयंत्र की नाईं भ्रमता रहता है । हे साधो! यह जो पञ्चभूत का शरीर तुम देखते हो सो सब वासनारूप है और वासना से ही खड़ा है । जैसे माला के दाने धागे के आश्रय से गुँथे होते हैं और जब धागा टूट जाता है तब न्यारे न्यारे हो जाते हैं और नहीं ठहरते वैसे ही वासना के क्षय होने पर पञ्चभूत का शरीर नहीं रहता । इससे सब अनर्थों का कारण वासना ही है । शुद्ध वासना में जगत् का अत्यन्त अभाव निश्चय होता है । हे शिष्य! अज्ञानी की वासना जन्म का कारण होती है और ज्ञानी की वासना जन्म का कारण नहीं होती । जैसे कच्चा बीज उगता है और जो दग्ध हुआ है सो फिर नहीं उगता वैसे ही अज्ञानी की वासना रससहित है इससे जन्म का कारण है और ज्ञानी की वासना रसरहित है वह जन्म का कारण नहीं । ज्ञानी की चेष्टा स्वाभाविक होती है । वह किसी गुण से मिलकर अपने में चेष्टा नहीं देखता । वह खाता, पीता, लेता, देता, बोलता चलता एवम् और अन्य व्यवहार करता है पर अन्तःकरण में सदा अद्वैत निश्चय को धरता है कदाचित् द्वैतभावना उसको नहीं फुरती । वह अपने स्वभाव में स्थित है इससे उसकी चेष्टा जन्म का कारण नहीं होती । जैसे कुम्हार के चक्र को जब तक घुमावे तब तक फिरता है और जब घुमाना छोड़ दे तब स्थीयमान गति से उतरते उतरते स्थिर रह जाता है वैसे ही जब तक अहंकार सहित वासना होती है तब तक जन्म पाता है और जब अहंकार से रहित हुआ तब फिर जन्म नहीं पाता । हे साधो! इस अज्ञानरूपी वासना के नाश करने को एक ब्रह्मविद्या ही श्रेष्ठ उपाय है जो मोक्ष उपायक शास्त्र है । यदि इसको त्याग कर और शास्त्ररूपी गर्त्त में गिरेगा तो कल्पपर्यन्त भी अकृत्रिम पद को न पावेगा । जो ब्रह्मविद्या का आश्रय करेगा वह सुख से आत्मपद को प्राप्त होगा । हे भारद्वाज! यह मोक्ष उपाय रामजी और वशिष्ठजी का संवाद है, यह विचारने योग्य है और बोध का परम कारण है । इसे आदि से अन्तपर्यन्त सुनो और जैसे रामजी जीवन्मुक्त हो विचरे हैं सो भी सुनो ।

एक दिन रामजी अध्ययनशाला से विद्या पढ़के अपने गृह में आये और सम्पूर्ण दिन विचारसहित व्यतीत किया । फिर मन में तीर्थ ठाकुरद्वारे का संकल्प धरकर अपने पिता दशरथ के पास, जो अति प्रजापालक थे, आये और जैसे हंस सुन्दर कमल को ग्रहण करे वैसे ही उन्होंने उनका चरण पकड़ा । जैसे कमल के फूल के नीचे कोमल सरैयाँ होती हैं और उन तरैयों सहित कमल को हंस पकड़ता है वैसे ही दशरथजी की अँगुलियों को उन्होंने ग्रहण किया और बोले, हे पिता! मेरा चित्त तीर्थ और ठाकुरद्वारों के दर्शनों को चाहता है । आप आज्ञा कीजिये तो मैं दर्शन कर आऊँ । मैं तुम्हारा पुत्र हूँ । आगे मैंने कभी नहीं कहा यह प्रार्थना अब ही की है इससे यह वचन मेरा न फेरना, क्योंकि ऐसा त्रिलोकी में कोई नहीं है कि जिसका मनोरथ इस घर से सिद्ध न हुआ हो इससे मुझको भी कृपाकर आज्ञा दीजिये । इतना कह कर वाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! जिस समय इस प्रकार रामजीने कहा तब वशिष्ठजी पास बैठे थे उन्होंने भी दशरथ से कहा, हे राजन् इनका चित्त उठा है रामजी को आज्ञा दो तीर्थ कर आवें और इनके साथ सेना, धन, मंत्री और ब्राह्मण भी दीजिये कि विधि पूर्वकदर्शन करें तब महाराज दशरथ ने शुभ मुहुर्त्त दिखाकर रामजी को आज्ञा दी । जब वे चलने लगे तो पिता और माता के चरणों में पड़े और सबको कण्ठ लगाकर रुदन करने लगे । इस प्रकार सबसे मिलकर लक्ष्मण आदि भाई, मन्त्री और वशिष्ठ आदि ब्राह्मण जो बिधि जाननेवाले थे बहुत सा धन और सेना साथ ली और दान पुण्य करते हुए गृह के बाहर निकले । उस समय वहाँ के लोगों और स्त्रियों ने रामजी के ऊपर फूलों और कलियों की माला की, जैसे बरफ बरसती है वैसी ही वर्षा की ओर रामजी की मूर्ति हृदय में धर ली । इसी प्रकार रामजी वहाँसे ब्राह्मणों और निर्धनों को दान देते गंगा, यमुना, सरस्वती आदि तीर्थों में विधिपूर्वक स्नानकर पृथ्वी के चारों ओर पर्यटन करते रहे । उत्तर-दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में दान किया और समुद्र के चारों ओर स्नान किया । सुमेरु और हिमालय पर्वत पर भी गये और शालग्राम, बद्री, केदार आदि में स्नान और दर्शन किये । ऐसे ही सब तीर्थस्नान, दान, तप, ध्यान और विधिसंयुक्त यात्रा करते करते एक वर्ष में अपने नगर में आये ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणेतीर्थयात्रावर्णनन्नाम द्वितीयसर्गः ॥२॥

अनुक्रम

विश्वामित्रागमन

वाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! जब रामजी यात्रा करके अपनी अयोध्यापुरी में आये तो नगरवासी पुरुष और स्त्रियों ने फूल और कली की वर्षा की, जय जय शब्द मुख से

उच्चारने लगे और बड़े उत्साह को प्राप्त भये जैसे इन्द्र का पुत्र स्वर्ग में आता है वैसे ही रामचन्द्रजी अपने घर में आये। रामजी ने पहिले राजा दशरथ और फिर वशिष्ठजी को प्रणाम किया ओर सब सभा के लोगों से यथायोग्य मिलकर अन्तःपुर में आ कौशल्या आदि माताओं को प्रणाम किया और भाई, बन्धु आदि कुटुम्ब से मिले । हे भारद्वाज! इस प्रकार रामजी के आने का उत्साह सात दिन पर्यन्त होता रहा । उस अन्तर में कोई मिलने आवे उससे मिलते और जो कोई कुछ लेने आवे उनको दान पुण्य करते थे अनेक बाजे बजते थे और भाट आदि बन्दीजन स्तुति करते थे । तदनन्तर रामजी का यह आचरण हुआ कि प्रातःकाल उठके स्नान सन्ध्यादि सत्कर्म कर भोजन करते और फिर भाई बन्धुओं से मिलकर अपने तीर्थ की कथा और देवद्वार के दर्शन की वार्त्ता करते थे । निदान इसी प्रकार उत्साह से दिन रात बिताते थे । एक दिन रामजी प्रातः काल उठके अपने पिता राजा दशरथ के निकट गये जिनका तेज चन्द्रमा के समान था । उस समय वशिष्ठादिक की सभा बैठी थी । वहाँ वशिष्ठजी के साथ कथा वार्त्ता की । राजा दशरथ ने उनसे कहा कि हे रामजी! तुम शिकार खेलने जाया करो । उस समय रामजी की अवस्था सोलह वर्ष से कई महीने कम थी । लक्ष्मण और शत्रुघ्न भाई साथ थे, पर भरतजी नाना के घर गये थे । निदान उन्हीं के साथ नित चर्चा हुलास कर और स्नान, सन्ध्यादिक नित्य कर्म और भोजन करके शिकार खेलने जाते थे । वहाँ जो जीवों को दुःख देनेवाले जानवर देखते उनको मारते और अन्य लोगों को प्रसन्न करते थे । दिनको शिकार खेलने जाते और रात्रि को बाजे निशान सहित अपने घर में आते थे । इसी प्रकार बहुत दिन बीते । एक दिन रामजी बाहर से अपने अन्तःपुर में आकर शोकसहित स्थित भये । हे भारद्वाज! राजकुमार अपनी सब चेष्टा और इन्द्रियों के रससंयुक्त विषयों को त्याग बैठे और उनका शरीर दुर्बल होकर मुख की कान्ति घट गई । जैसे कमल सूखकर पीतवर्ण हो जाता है वैसे ही रामजी का मुख पीला हो गया जैसे सूखे कमल पर भँवरे बैठे हों वैसे ही सूखे मुखकमल पर नेत्ररूपी भँवरे भासने लगे । जैसे शरत्काल में ताल निर्मल होता है वैसे ही इच्छारूपी मल से रहित उनका चित्तरूपी ताल निर्मल हो गया और दिन पर दिन शरीर निर्बल होता गया । वह जहाँ बैठें वहीं चिंता संयुक्त बैठे रह जावें और हाथ पर चिबुक धरके बैठें । जब टहलुवे मन्त्री बहुत कहें कि हे प्रभा! यह स्नान सन्ध्या का समय हुआ है अब उठो तब उठकर स्नानादिक करें अर्थात् जो कुछ खाने पीने बोलने, चलने और पहिरने की क्रिया थी सो सब उन्हें विरस हो गई । तब लक्ष्मण और शत्रुघ्न भी रामजी को संशययुक्त देखके विरस प्रकार हो गये और राजा दशरथ यह वार्ता सुनके रामजी के पास आये तो क्या देखा कि रामजी महाकृश हो गये हैं । राजा ने इस चिन्ता से आतुर हो कि हाय हाय इनकी यह क्या दशा हुई रामजी को गोद में बैठाया और कोमल सुन्दर शब्दों से पूछने लगे कि हे पुत्र! तुमको क्या दुःख प्राप्त हुआ है जिससे तुम शोकवान् हुए

हो? रामजी ने कहा कि हे पिता! हमको तो कोई दुःख नहीं । ऐसा कहकर चुप हो रहे । जब इसी प्रकार कुछ दिन बीते तो राजा और सब स्त्रियाँ बड़ी शोकवान् हुईं । राजा राजमन्त्रियों से मिलकर विचार करने लगे कि पुत्र का किसी ठौर विवाह करना चाहिये और यह भी विचार किया कि क्या कारण है जो मेरे पुत्र शोकवान् रहते हैं । तब उन्होंने वशिष्ठजी से पूछा कि हे मुनीश्वर! मेरे पुत्र शोकातुर क्यों रहते हैं? वशिष्ठजी ने कहा हे राजन् जैसे पृथ्वी , जल, तेज, वायु और आकाश महाभूत अल्पकार्य में विकारवान् नहीं होते जब जगत उत्पन्न और प्रलय होता है तब विकारवान् होते हैं वैसे ही महापुरुष भी अल्पकार्य से विकारवान् नहीं होते । हे राजन्! तुम शोक मत करो । रामजी किसी अर्थ के निमित्त शोकवान् हुए होंगे; पीछे इनको सुख मिलेगा । इतना कह वाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज! ऐसे ही वशिष्ठजी और राजा दशरथ विचार करते थे कि उसी काल में विश्वामित्र ने अपने यज्ञ के अर्थ राजा दशरथ के गृह पर आकर द्वारपाल से कहा कि राजा दशरथ से कहो कि गाधि के पुत्र विश्वामित्र बाहर खड़ेहैं । द्वारपाल ने आकर राजा से कहा कि हे स्वामिन्! एक बड़े तपस्वी द्वार पर खड़े हैं और उन्होंने कहा है कि राजा दशरथ के पास जाके कहो कि विश्वामित्र आये हैं । हे भारद्वाज! जब इस प्रकार द्वारपाल ने आकर कहा तब राजा, जो मण्डलेश्वरों सहित बैठा था और बड़ा तेजवान् था सुवर्ण के सिंहासन से उठ खड़ा हुआ और पैदल चला । राजा के एक ओर वशिष्ठजी और दूसरी ओर वामदेवजी और सुभट की नाईं मण्डलेश्वर स्तुति करते चले और जहाँ से विश्वामित्र दृष्टि आये वहाँ से ही प्रणाम करने लगे । पृथ्वी पर जहाँ राजा का शीश लगता था वहाँ पृथ्वी हीरे और मोती से सुन्दर हो जाती थी । इसी प्रकार शीश नवाते राजा चले । विश्वामित्रजी काँधे पर बड़ी बड़ी जटा धारण किये और अग्नि के समान प्रकाशमान परम शान्तस्वरूप हाथ में बाँस की तन्द्री लिये हुए थे । उनके चरणकमलों पर राजा इस भाँति गिरा जैसे सूर्यपदा शिवजी के चरणार विन्द में गिरे थे । और कहा हे प्रभो! मेरे बड़े भाग्य हैं जो आपका दर्शन हुआ । आज मुझे ऐसा आनन्द हुआ जो आदि अन्त और मध्यसे रहित अविनाशी है । हे भगवान! आज मेरे भाग्य उदय हुए और मैं भी धर्मात्माओं में गिना जाऊँगा, क्योंकि आप मेरे कुशल निमित्त आये हैं । हे भगवान्! आपने बड़ी कृपा की जो दर्शन दिया । आप सबसे उत्कृष्ट दृष्टि आते हैं, क्योंकि आप में दो गुण हैं --एक तो यह कि आप क्षत्रिय हैं पर ब्राह्मण का स्वभाव आप में है और दूसरे यह कि शुभ गुणों से परिपूर्ण हैं । हे मुनीश्वर! ऐसी किसी की सामर्थ्य नहीं कि क्षत्रिय से ब्राह्मण हो । आपके दर्शन से मुझे अति लाभ हुआ । फिर वशिष्ठजी विश्वामित्रजी को कण्ठ लगाके मिले और मण्डलेश्वरों बहुत प्रणाम किये । तदनन्तर राजा दशरथ विश्वामित्रजी को भीतर ले गये और सुन्दर सिंहासन पर बैठाकर विधि पूर्वक पूजा की और अर्ध्यपादार्चन करके प्रदक्षिणा की । फिर वशिष्ठजी ने भी विश्वामित्रजी का पूजन

किया और विश्वामित्रजीने उनका पूजन किया इसी प्रकार अन्योन्य पूजन कर यथायोग्य अपने अपने स्थानों पर बैठे तब राजा दशरथ बोले, हे भगवान्! हमारे बड़े भाग्य हुए जो आपका दर्शन हुआ । जैसे किसी को अमृत प्राप्त हो वा किसी का मरा हुआ बान्धव विमान पर चढ़के आकाश से आवे और उसके मिलने से आनन्द हो वैसा आनन्द मुझे हुआ हे मुनीश्वर! जिस अर्थ के लिये आप आये हैं वह कृपा करके कहिये और अपना वह अर्थ पूर्ण हुआ जानिये । ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो मुझको देना कठिन है, मेरे यहाँ सब कुछ विद्यमान है ।

इति श्री योगवाशिष्टेवैराग्यप्रकरणे विश्वामित्रागमनवर्णनं नाम तृतीयस्सर्गः ॥३॥

अनुक्रम

दशरथ विषाद

वाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! जब इस प्रकार राजा ने कहा तो मुनियों में शार्दूल विश्वामित्रजी ऐसे प्रसन्न हुए जैसे चन्द्रमा को देखकर क्षीरसागर उमड़ता है । उनके रोम खड़े हो आये और कहने लगे, हे राजशार्दूल! तुम धन्य हो! ऐसे तुम क्यों न कहो । तुम्हारे में दो गुण हैं-एक तो यह कि तुम रघुवंशी हो और दूसरे यह कि वशिष्ठजी जैसे तुम्हारे गुरु हैं जिनकी आज्ञा में चलते हो । अब जो कुछ मेरा प्रयोजन है वह प्रकट करता हूँ । मैंने दशगात्र यज्ञ का आरम्भ किया है, जब यज्ञ करने लगता हूँ तब खर और दूषण निशाचर आकर विध्वंस कर जाते हैं और माँस हाड़ और रुधिर डाल जाते हैं जिससे वह स्थान यज्ञ करने योग्य नहीं रहता और जब मैं और जगह जाता हूँ तो वहाँ भी वे उसी प्रकार अपवित्र कर जाते हैं इसलिये उनके नाश करने के लिये मैं तुम्हारे पास आया हूँ । कदाचित् यह कहिये कि तुम भी तो समर्थ हो, तो हे राजन्! मैंने जिस यज्ञ का आरम्भ किया है उसका अंग क्षमा है । जो मैं उनको शाप दूँ तो वह भस्म हो जावें पर शाप क्रोध बिना नहीं होता । जो मैं क्रोध करूँ तो यज्ञ निष्फल होता है और जो चुपकर रहूँ तो राक्षस अपवित्र वस्तु डाल जाते हैं । इससे अब मैं आपकी शरण में आया हूँ । हे राजन्! अपने पुत्र रामजी को मेरे साथ भेज दो, वह राक्षसों को मारें और मेरा यज्ञ सफल हो । यह चिन्ता तुम न करना कि मेरा पुत्र अभी बालक है । यह तो इन्द्र के समान शूरवीर है । जैसे सिंह के सम्मुख मृग का बच्चा नहीं ठहर सकता वैसे ही इसके सम्मुख राक्षस न ठहर सकेंगे । इसको मेरे साथ भेजने से तुम्हारा यश और धर्म दोनों रहेंगे और मेरा कार्य होगा इसमें सन्देह नहीं । हे राजन! ऐसा कार्य त्रिलोकी में कोई नहीं जो रामजी न कर सकें इसलिये मैं तुम्हारे पुत्र को लिये जाता हूँ यह मेरे हाथ से रक्षित रहेगा और कोई विघ्न न होने दूँगा । जैसे तुम्हारे पुत्र हैं मैं और वशिष्ठजी जानते हैं । और ज्ञानवान् भी

जो त्रिकाल दर्शी हैं जानेंगे और किसी की सामर्थ्य नहीं जो इनको जानें । हे राजन् जो समय पर कार्य होता है वह थोड़े ही परिश्रम से सिद्ध होता है और समय बिना बहुत परिश्रम करने से भी नहीं होता । खर और दूषण प्रबल दैत्य हैं, मेरे यज्ञ को खण्डित करते हैं । जब रामजी जावेंगे तब वह भाग जावेंगे इनके आगे खड़े न रह सकेंगे । जैसे सूर्य के तेज से तारागण का प्रकाश क्षीण हो जाता है वैसे ही रामजी के दर्शन से वे स्थित न रहेंगे । इतना कहकलर वाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज! जब विश्वामित्रजीने ऐसा कहा तब राजा दशरथ चुप होकर गिर पड़े और एक मुहूर्त पर्यन्त पड़े रहे ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे दशरथ विषादो नाम चतुर्थस्सर्गः ॥४॥

अनुक्रम

दशरथाक्तिवर्णन

वाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज! एक मुहूर्त उपरान्त राजा उठे और अधैर्य होकर बोले हे मुनीश्वर! आपने क्या कहा? रामजी तो अभी कुमार हैं । अभी तो उन्होंने शस्त्र और अस्त्रविद्या नहीं सीखी, बल्कि फूलों की शय्या पर शयन करने वाले; अन्तःपुर में स्त्रियों के पास बैठनेवाले और बालकों के साथ खेलनेवाले हैं । उन्होंने कभी भी रणभूमि नहीं देखी और न भृकुटी चढ़ाके कभी युद्ध ही किया । वह दैत्यों से क्या युद्ध करेंगे? कभी पत्थर और कमल का भी युद्ध हुआ है? हे मुनीश्वर! मैं तो बहुत वर्षों का हुआ हूँ । इस वृद्धावस्था में मेरे घर मेंरे चार पुत्र हुए हैं; उन चारों में रामजी अभी सोलह वर्ष के हुए हैं और मेरे प्राण हैं । उनके बिना मैं एक क्षण भी नहीं रह सकता, जो तुम उनको ले जावोगे तो मेरे प्राण निकल जावेंगे । हे मुनीश्वर! केवल मुझे ही उनका इतना स्नेह नहीं किंतु लक्ष्मण शत्रुघ्न, भरत और माताओं के भी प्राण हैं । जो तुम उनको ले जावोगे तो सब ही मर जावेंगे जो तुम हमको रामजी के वियोग से मारने आये हो तो ले जावो । हे मुनीश्वर मेरे चित्त में तो रामजी पूर्ण हो रहे हैं उनको मैं आपके साथ कैसे दूँ? मैं तो उनको देखकर प्रसन्न होता हूँ । रामजी के वियोग से मेरे प्राण कैसे बचेंगे? हे मुनीश्वर! ऐसी प्रीति मुझे स्त्री, धन और पदार्थों की नहीं जैसी रामजी की है । मैं आपके वचन सुनकर अति शोकवान् हुआ हूँ । मेरे बड़े अभाग्य उदय हुए जो आप इस निमित्त आये । मैं रामजी को कदापि नहीं दे सकता । जो आप कहिये तो मैं एक अक्षौहिणी सेना, जो अति शूरवीर और शस्त्र अस्त्रविद्या से सम्पन्न हैं साथ लेकर चलूँ और उनको मारूँ पर जो कुबेर का भाई और विश्रवा का पुत्र रावण हो तो उससे मैं युद्ध नहीं कर सकता । पहिले मैं बड़ा पराक्रमी था; ऐसा कोई त्रिलोकी में न था जो मेरे सामने आता, पर अब वृद्धावस्था प्राप्त

होकर देह जर्जर हो गई है । हे मुनीश्वर! मेरे बड़े अभाग्य हैं जो आप आये । मैं तो रावण से काँपता हूँ और केवल मैं ही नहीं वरन् इन्द्र आदि देवता भी उससे काँपते और भय पाते हैं । किसकी सामर्थ्य है जो उससे युद्ध करे । इस काल में वह बड़ा शूरवीर है । जो मेरी ही उसके साथ युद्ध करने की सामर्थ्य नहीं तो राजकुमार रामजी की क्या सामर्थ्य है? जिन रामजी को तुम लेने आये हो वह तो रोगी पड़े हैं । उनको ऐसी चिन्ता लगी है जिससे महाकृश हो गये हैं और अन्तःपुर में अकेले बैठे रहते हैं । खाना-पीना इत्यादि जो राजकुमारों की चेष्टायें हैं वह भी सब उनको बिसर गई हैं और मैं नहीं जानता कि उनको क्या दुःख हुआ । जैसे पीतवर्ण कमल होता है वैसे ही उनका मुख हो गया है । उनको युद्ध की सामर्थ्य कहाँ है? उन्होंने तो अपने स्थान से बाहर की पृथ्वी भी नहीं देखी है हमारे प्राण वहीं हैं उनके वियोग से हम नहीं जी सकते ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे दशरथाक्तिवर्णनन्नाम पञ्चमस्सर्गः ॥५॥

अनुक्रम

रामसमाजवर्णन

वाल्मीकिजी बोले कि जब इस प्रकार दशरथजी ने महादीन और अधैर्य होकर कहा तो विश्वामित्र जी क्रोध करके कहने लगे कि हे राजन्! तुम अपने धर्म को स्मरण करो । तुमने कहा था कि तुम्हारा अर्थ सिद्ध करूँगा पर अब तुम अपने धर्मको त्यागते हो । जो तुम सिंहों के समान मृगों की नाईं भागते हो तो भागो पर आगे रघुवंशी कुल में ऐसा कोई नहीं हुआ कि जिसने वचन फेरा हो। जो तुम करते हो सो करो हम चले जावेंगे परन्तु यह तुमको योग्य न था क्योंकि शून्य गृह से शून्य ही होकर जाता है । तुम बसते रहो और राज्य करते रहो जैसा कुछ होगा हम समझ लेंगे । इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले कि जब इस प्रकार विश्वामित्र जी को क्रोध उत्पन्न हुआ तो पचास कोटियोजन तक पृथ्वी काँपने लगी और इन्द्रादिक देवता भयवान् हुए कि यह क्या हुआ? तब वशिष्ठजी बोले, हे राजन! इक्ष्वाकुकुल में सब परमार्थी हुए हैं और तुम अपना धर्म क्यों त्यागते हो? मेरे सामने तुमने विश्वामित्रजी से कहा है कि तुम्हारा अर्थ पूरा करूँगा पर अब क्यों भागते हो । राम जी को तुम इनके साथ कर दो, यह तुम्हारे पुत्र की रक्षा करेंगे । इस पुरुष के सामने किसी का बल नहीं चलता यह साक्षात् ही काल की मूर्ति हैं जो तपस्वी कहिये तो भी इन के समानदूसरा नहीं है और शस्त्र और अस्त्रविद्या भी इनके सदृशकोई नहीं जानता क्योंकि दक्ष प्रजापति ने अपनी दो पुत्रियाँ जिनका नाम जया और सुभगा था विश्वामित्र जी को दी थीं जिन्होंने पाँच पाँच सौ पुत्र दैत्यों के मारने के लिये प्रकट किये वे दोनों इनके सम्मुख मूर्ति धारण करके स्थित होती हैं इससे कौन जीत सकता है?

जिसके साथी विश्वामित्रजी हों उसको किसी का भय नहीं । आप इनके साथ अपना पुत्र निस्संशय होकर दो । किसी को सामर्थ्य नहीं कि इनके होते तुम्हारे पुत्र को कुछ कह सके । जैसे सूर्य के उदय से अन्धकार का अभाव हो जाता है वैसे ही इनकी दृष्टि से दुःख का अभाव हो जाता है । हे राजन! इनके साथ तुम्हारे पुत्र को कोई खेद न होगा । तुम इक्ष्वाकु के कुल में उत्पन्न हुए हो और दशरथ तुम्हारा नाम है, जो तुम ऐसे हो अपने धर्ममें स्थित न रहे तो और जीवों से धर्म का पालन कैसे होगा? जो कुछ श्रेष्ठ पुरुष चेष्टा करते हैं उनके अनुसार और जीव भी करते हैं । जो तुम अपने वचनों का पालन न करोगे तो और किसी से क्या होगा? तुम्हारे कुल में अपने वचन से कोई नहीं । यदि तुम दैत्यों के भय से शोकवान् हो तो मत हो । कदाचित् मूर्तिधारी काल आकर स्थित हो तो भी विश्वामित्र के होते तुम्हारे पुत्र को कुछ भय न होगा । तुम शोक मत करो और अपने पुत्र को इनके साथ कर दो । जो तुम अपना पुत्र न दोगे तो तुम्हारा दो प्रकार का धर्म नष्ट होगा-एक धर्म यह कि कूप, बावली और ताल जो बनवाये हैं उनका पुण्य नष्ट हो जावेगा, दूसरे यह कि तप, व्रत, यज्ञ, दान, स्नादिक क्रिया का फल भी नष्ट होकर तुम्हारा गृह अर्थहीन हो जावेगा । इससे मोह और शोक को छोड़ और धर्म को स्मरण करके रामजी को इनके साथ कर दो तो तुम्हारे सब कार्य सफल होंगे । हे राजन्! इस प्रकार जो तुम्हें करना था तो प्रथम ही विचारकर कहते क्योंकि विचार किये बिना काम करने का परिंणाम दुःख होता है । इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले हे भारद्वाज जब इस प्रकार वशिष्ठजी ने कहा तो राजा दशरथ धैर्यवान् हुए और भृत्यों में जो श्रेष्ठ भृत्य था उसको बुलाकर कहा हे महाबाहो! रामजी को ले आवो! उनके साथ जो चाकर बाहर आने जाने वाला और छल से रहित था राजा की आज्ञा लेकर रामजी के निकट गया और एक मुहूर्त्त पीछे आकर कहने लगा हे देव! रामजी तो बड़ी चिन्ता में बैठे हैं । जब मैंने रामजी से बारंबार कहा कि चलिये तब वे कहने लगे कि चलते हैं । ऐसे ही कह कह चुप हो रहते हैं । दूत का यह वचन सुन राजा ने कहा कि रामजी के मन्त्री और सब नौकरों को बुलावो और जब वे सब निकट आये तो राजा ने आदर और युक्तिपूर्वक कोमल और सुन्दर वचन मन्त्री से इस भाँति कहा कि हे रामजी के प्यारे! रामजी की क्या दशा है और ऐसी दशा क्योंकर हुई है तो सब क्रम से कहो? मंत्री बोला, हे देव! हम क्या कहें? हम अति चिन्ता से केवल आकार और प्राण सहित दीखते हैं किंतु मृतक के समान हैं क्योंकि हमारे स्वामी रामजी बढ़ी चिन्ता में हैं । हे राजन्! जिस दिन से रघुनाथजी तीर्थ करके आये हैं उस दिन से चिन्ता को प्राप्त हुए हैं । जब हम उत्तम भोजन और पान करने और पहिरने और देखने के पदार्थ ले जाते हैं तो उनको देखकर वे किसी प्रकार प्रसन्न नहीं होते । वे तो ऐसी चिन्ता में लीन हैं कि देखते भी नहीं और जो देखते हैं तो क्रोधकरके सुखदायी पदार्थों का निरादर करते हैं । अन्तःपुर में उनकी माता नाना प्रकार

के हीरे और मणि के भूषण देती हैं तो उनको भी डाल देते हैं अथवा किसी निर्धन को दे देते हैं; प्रसन्न किसी पदार्थ से नहीं होते । सुन्दर स्त्रियाँ नाना प्रकार के भूषणों सहित महामोह करनेवाली निकट आकर उनकी प्रसन्नता के निमित्त लीला और कटाक्ष करती हैं वे उनको भी विषवत् जानते हैं । जैसे जैसे पपीहा और किसी जल को नहीं पीतावैसे ही वे जब अन्तःपुर में जाते हैं तब उन स्त्रियों को देखकर क्रोधवान् होते हैं । हें राजन्! उनको कुछ भला नहीं लगता वे तो किसी बड़ी चिन्ता में मग्न हैं । तृप्त होकर भोजन नहीं करते क्षुधावन्त रहते हैं उन्हें कुछ न पहिरने और खाने पीने की इच्छा है, न राज्य की इच्छा है और न इन्द्रियों के किसी सुख की इच्छा है । वे तो उन्मत्त की नाईं बैठे रहते हैं और जब हम कोई सुखदाई पदार्थ फूलादिक ले जाते हैं तब क्रोध करते हैं । हम नहीं जानते कि क्या चिन्ता उनको हुई है जो एक कोठरी में पद्मासन लगाये हाथ पर मुख धरे बैठे रहते हैं । जो कोई बड़ा मन्त्री आकर पूछता है तो उससे कहते हैं कि तुम जिसको सम्पदा मानते हो वह आपदा है और जिसको आपदा जानते हो वह आपदा नहीं है । संसार के नाना प्रकार के पदार्थ जो रमणीय जानते हो वे सब झूठे हैं पर इसी में सब डूबे हैं । ये सब मृगतृष्णा के जलवत् हैं; इनको सत्य जान मूर्ख हिरण दौड़ते और दुःख पाते हैं । हे राजन! वे कदाचित् बोलते हैं तो ऐसे बोलते हैं और कुछ उनको सुखदायी नहीं भासता । जो हम हँसी की वार्ता करते हैं वे हँसते भी नहीं । जिस पदार्थ को प्रीतिसंयुक्त लेते थे उस पदार्थ को अब डाल देते हैं और दिन पर दिन दुर्बल होते जाते हैं । जैसे मेघ की बून्द से पर्वत चलायमान नहीं होते वैसे ही वे भी चलायमान नहीं होते, और जो बोलते हैं तो ऐसे कहते हैं कि न राज्य सत्य है, न भोग सत्य है न यह जगत् सत्य है, न भ्राता सत्य है और न मित्र सत्य है । मिथ्या पदार्थों के निमित्त मूर्ख यत्न करते हैं । जिनको सब सत्य और सुखदायक जानते हैं वे बन्धन के कारण हैं । जो कोई राजा अथवा पण्डित इनके पास जाता है तो उनको देखकर कहते हैं ये पशु हैं-- आशारूपी फाँसी से बँधे हुए हैं। हे राजन्! जो कुछ योग्य पदार्थ हैं उनको देखकर उनका चित्त प्रसन्न नहीं होता बल्कि देखकर क्रोधवान् होते हैं । जैसे पपीहा मारवाड़ में जावे तो मेघों की बून्दों को नहीं देखता और खेदवान् होता है वैसे ही रामजी विषयों से खदवान् होते हैं । इससे हम जानते हैं कि उनको परमपद पाने की इच्छा है परन्तु कदाचित् उनके मुख से यह नहीं सुना त्याग का भी अभिमान उन्हें कदाचित नहीं है क्योंकि कभी गाते हैं और बोलते हैं तो कहते हैं! हाय मैं अनाथ मारा गया! अरे मूर्खो! तुम संसार समुद्र में क्यों डूबते हो? यह संसार अनर्थ का कारण है । इसमें सुख कदापि नहीं है इससे छूटने का उपाय करो । वह किसी के साथ बोलते नहीं और न हँसते हैं; किसी अति चिन्ता में डूबे हैं । वह किसी पदार्थ से आश्चर्यवान् भी नहीं होते । जो कोई कहे कि आकाश में बाग लगा है और उसमें फूल फूले हैं । उनको मैं ले आया; तो उसको सुनकर भी

आश्चर्यवान् नहीं होते , सब भ्रममात्र समझते हैं । उनको न किसी पदार्थ से हर्ष होता है, न किसी से शोक होता है; किसी बड़ी चिन्ता में मग्न हैं पर उस चिन्ता के निवारण करने की किसी में सामर्थ्य नहीं देखते । हे राजन् हमको यह चिन्ता लग रही है कि रामजी को खाने, पहिनने,बोलने और देखने की इच्छा नहीं रही । और न किसी कर्म की उनको इच्छा है ऐसा न हो कि कहीं मृतक हो जावें? जो कोई कहता है कि तुम चक्रवर्ती राजा हो तुम्हारी बड़ी आयु हो और बड़ा सुख पावो तो उसके वचन सुनकर कठोर बोलते हैं । हे राजन्! केवल रामजी को ही ऐसी चिन्ता नहीं वरन् लक्ष्मण और शत्रुघ्न को भी ऐसे ही चिन्ता लग रही है । जो कोई उनकी चिन्ता दूर करनेवाला हो तो करे नहीं तो बड़ी चिन्ता में डूबे रहेंगे । हे राजन् अब क्या कहते हो? तुम्हारे पुत्र सबसे विरक्त हो एक वस्त्र ओढ़े बैठे हैं । इससे अब तुम वही उपाय करो जिससे उनकी चिन्ता निवृत्त हो । इतना सुन विश्वामित्रजी बोले हे साधो! यदि रामजी ऐसे है तो हमारे पास लावो, हम उनका दुःख निवृत्त करेंगे । हे राजन्! दशरथ! तुम धन्य हो; जिनका पुत्र विवेक और वैराग्य को प्राप्त हुआ है । हम तुम्हारे पुत्र को परम पद प्राप्त करावेंगे और अभी उनके सब दुःख मिट जावेंगे । हम और वशिष्ठादि एक युक्ति से उपदेश करेंगे उससे उनको आत्मपद की प्राप्ति होगी । तब वह दशा तुम्हारे पुत्र की होगी कि वह लोष्ट, पत्थर और सुवर्ण को समान जानेंगे । जो क्षत्रियों का प्राकृतिक आचार है सो वह करेंगे और हृदय से उदासीन रहेंगे इससे तुम्हारा कुल कृतार्थ होगा । तुम रामजी को शीघ्र बुलावो । इतना कह कर वाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! ऐसे मुनीन्द्र के वचन सुनकर राजा दशरथ ने मन्त्री और नौकरों से कहा कि राम, लक्ष्मण और शत्रुघ्नको साथ ले आवो । जब मन्त्री और भृत्योंने रामजी के पास जाकर कहा तो रामजी आये और राजा दशरथ, वशिष्ठजी और विश्वामित्र को देखा कि तीनों पर चमर हो रहे हैं और बड़े बड़े मण्डलेश्वर बैठे हैं । सबने रामजी को देखा कि उनका शरीर कृश हो रहा है । जैसे महादेवजी स्वामिकार्त्तिक को आते देखें वैसे ही राजा दशरथ ने रामजी को आते देखा । रामजी ने वहाँ आकर राजा दशरथजी के चरण पर मस्तक लगा प्रणाम किया और वैसे ही वशिष्ठजी, विश्वामित्र और सभा में जो बड़े बड़े ब्राह्मण बैठे थे उनको भी प्रणाम किया । जो बड़े बड़े मण्डलेश्वर बैठे थे उन्होंने उठकर रामजी को प्रणाम किया । राजा दशरथने रामजी को गोद में बैठाकर मस्तक चूमा और बहुत प्रेम से पुलकित हो रामजी से कहा हे पुत्र! केवल विरक्तता से परमपद की प्राप्ति नहीं होती । गुरु वशिष्ठजी के उपदेश की युक्ति से परमपद की प्राप्ति होगी । वशिष्ठजी बोले, हे रामजी! तुम धन्य हो और बड़े शूर हो कि विषय रूपी शत्रु तुमने जीते हैं । विश्वामित्रजी बोले, हे कमलनयन राम! अपने अन्तःकरण की चपलता को त्यागकर जो कुछ तुम्हारा आशय हो प्रकट कर कहो कि तुमको मोह कैसे हुआ, किस कारण हुआ और कितना है? एवं अब जो कुछ तुमको वाञ्छित हो सो भी कहो

। हम तुमको उसी पद में प्राप्त करेंगे जिसमे कदाचित दुःख न हो । जैसे आकाश को चूहा नहीं काट सकता वैसै ही तुमको कदाचित् पीड़ा होगी । हे रामजी! हम तुम्हारे सम्पूर्णदुःख नाश कर देंगे । तुम संशय मत करो जो कुछ तुम्हारा वृत्तान्त हो सो हमसे कहो ।इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज! जैसे मेघ को देखकर मोर प्रसन्न होता है वैसे ही विश्वामित्र के वचन सुनकर रामजी प्रसन्न हुए अपने हृदय में निश्चय किया कि अब मुझको अभीष्ट पद की प्राप्ति होगी ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे रामसमाजवर्णनोनाम षष्ठस्सर्गः ॥६॥

अनुक्रम

रामेणवैराग्य वर्णन

श्री रामजी बोले, हे भगवान्! जो वृत्तान्त है सो तुम्हारे सम्मुख क्रम से कहता हूँ मैं राजा दशरथ के घर में उत्पन्न होकर क्रमसे बड़ा हुआ और चारों वेद पढ़कर ब्रह्मचर्यादि व्रत धारण किये; तदनन्तर घर में आया तो मेरे हृदय में विचार हुआ कि तीर्थाटन करूँ और देवद्वारों में जाकर देवों के दर्शन करूँ । निदान मैं पिता की आज्ञा लेकर तीर्थों में गया और गंगा आदि सम्पूर्ण तीर्थों में स्नान और शालग्राम और केदार आदि ठाकुरों के विधिसंयुक्त दर्शन करके यहाँ आया । फिर उत्साह हुआ तब यह विचार आया कि प्रातःकाल उठकर स्नान सन्ध्यादिक कर्म करके भोजन करता । जब इस प्रकार से कुछ दिन व्यतीत हुए तब मेरे हृदय में एक विचार उत्पन्न हुआ जो मेरे हृदय को खैंच ले गया । जैसे नदी के तट पर तृण बेल होती है उसको नदी का प्रवाह खींच ले जाता है वैसे ही मेरे हृदय में जो कुछ जगत् की आस्थारूपी बेल थी उसको विचाररूपी प्रवाह खींच ले गया । तब मैंने जाना कि राज्य करने से क्या है, भोग से क्या है और जगत क्या है - सब भ्रममात्र है - इसकी वासना मूर्ख रखते हैं; यह स्थावर, जंगम जगत् सब मिथ्या है । हे मुनीश्वर! जितने कुछ पदार्थ हैं वह सब मन से उत्पन्न होते हैं सो मन ही भ्रममात्र है अनहोता मन दुःखदायी हुआ है । मन जो पदार्थों को सत्य जानकर दौड़ता है और सुखदायक जानता है सो मृगतृष्णा के जलवत् है । जैसे मृगतृष्णा के जल को देखकर मृग दौड़ते हैं और दौड़ते-दौड़ते थक कर गिर पड़ते हैं तो भी उनको जल प्राप्त नहीं होता वैसे ही मूर्ख जीव पदार्थों को सुखदायी जानकर भोगने का यत्न करते हैं और शान्ति नहीं पाते । हे मुनीश्वर! इन्द्रियों के भोग सर्पवत् है जिनका मारा हुआ जन्म मरण और जन्म से जन्मान्तर पाता है । भोग और जगत् सब भ्रममात्र हैं उनमें जो आस्था करते हैं वह महामूर्ख हैं मैं विचार करके ऐसा जानता हूँ कि सब आगमापायी है अर्थात् आते भी हैं और जाते भी हैं । इससे जिस पदार्थ का नाश न हो वही पदार्थ पाने योग्य है इसी कारण

मैंने भोगों को त्याग दिया है । हे मुनीश्वर! जितने सम्पदारूप पदार्थ भासते हैं वह सब आपदा हैं; इनमें रञ्चक भी सुख नहीं । जब इनका वियोग होता है तब कण्टक की नाईं मन में चुभते हैं । जब इन्द्रियों को भोग प्राप्त होते हैं तब जीव राग द्वेष से जलता है और जब नहीं प्राप्त होते तब तृष्णा से जलता है--इससे भोग दुःखरूप ही है । जैसे पत्थर की शिला में छिद्र नहीं होता वैसे ही भोगरूपी दुःख की शिला में सुखरूप छिद्र नहीं होता । हे मुनीश्वर! मैं विषय की तृष्णा में बहुत काल से जलता रहा हूँ । जैसे हरे वृक्ष के छिद्र में अग्नि धरी हो तो धुँवा हो थोड़ा थोड़ा जलता रहता है वैसे ही भोगरूपी अग्नि से मन जलता रहता है । विषयों में कुछ भी सुख नहीं है दुःख बहुत हैं, इससे इनकी इच्छा करनी मूर्खता है । जैसे खाईं के उपर तृण और पात होते हैं और उससे खाईं आच्छादित हो जाती है उसको देख हरिण कूदकर दुःख पाता है वैसे ही मूर्ख भोग को सुखरूप जानकर भोगने की इच्छा करता है और जब भोगता है तब जन्म से जन्मान्तररूपी खाईं में जा पड़ता है और दुःख पाता है । हे मुनीश्वर! भोगरूपी चोर अज्ञानरूपी रात्रिमें आत्मा रूपी धन लूट ले जाता है, पर उसके वियोग से महादीन रहता है । जिस भोग के निमित्त यह यत्न करता है वह दुखरूप है । उससे शान्ति प्राप्त नहीं होती और जिस शरीर का अभिमान करके यह यत्न करता है वह शरीर क्षणभंगुर और असार है । जिस पुरुष को सदा भोग की इच्छा रहती है वह मूर्ख और जड़ है । उसका बोलना और चलना भी ऐसा है जैसे सूखे बाँस के छिद्र में पवन जाता है और उसके वेग से शब्द होता है । जैसे थका हुआ मनुष्य मारवाड़ के मार्ग की इच्छा नहीं करता वैसे ही दुःख जानकर मैं भोग की इच्छा नहीं करता । लक्ष्मी भी परम अनर्थकारी है जब तक इसकी प्राप्ति नहीं होती तब तक उसके पाने का यत्न होता है और यह अनर्थ करके प्राप्त होती है । जब लक्ष्मी प्राप्त हुई तब सब सद्गुण अर्थात् शीलता, सन्तोष, धर्म, उदारता, कोमलता, वैराग्य विचार दयादिक का नाश कर देती है । जब ऐसे गुणों का नाश हुआ तब सुख कहाँ से हो, तब तो परम आपदा ही प्राप्त होती है । इसको परमदुःख का कारण जानकर मैंने त्याग दिया है । हे मुनीश्वर! इस जीव में गुण तबतक हैं जब तक लक्ष्मी नहीं प्राप्त हुई । जब लक्ष्मी की प्राप्ति हुई तब सब गुण नष्ट हो जाते हैं । जैसे बसन्त ऋतु की मञ्जरी तब तक हरी रहती है जब तक ज्येष्ठ आषाढ़ नहीं आता और जब ज्येष्ठ आषाढ़ आया तब मञ्जरी जल जाती है वैसे ही जब लक्ष्मी की प्राप्ति हुई तब शुभ गुण जल जाते हैं । मधुर वचन तभी तक बोलता है जब तक लक्ष्मी की प्राप्ति नहीं है और जब लक्ष्मी की प्राप्ति हुई तब कोमलता का अभाव होकर कठोर हो जाता है । जैसे जल पतला तब तक रहता है जब तक शीतलता का संयोग नहीं हुआ और जब शीतलता का संयोग होता है तब बरफ होकर कठोर दुःखदायक हो जाता है; वैसे यह जीव लक्ष्मी से जड़ हो जाता है । हे मुनीश्वर! जो कुछ संपदा है वह आपदा का मूल है, क्योंकि जब लक्ष्मी की प्राप्ति होती है

तब बड़े-बड़े सुख भोगता है और जब उसका अभाव होता है तब तृष्णा से जलता है और जन्म से जन्मान्तर पाता है । लक्ष्मी की इच्छा करना ही मूर्खता है । यह तप क्षणभंगुर है, इससे भोग उपजते और नष्ट होते हैं । जैसे जल से तरंग उपजते और मिट जाते हैं और जैसे बिजली स्थिर नहीं होती वैसे ही भोग भी स्थिर नहीं रहते । पुरुष में शुभ गुण तब तक हैं जब तक तृष्णा का स्पर्श नहीं और जब तृष्णाहुई तब गुणों का अभाव हो जाता है । जैसे दूध में मधुरता तब तक है जब तक उसे सर्प ने स्पर्श नहीं किया और सर्प ने स्पर्श किया तब वही दूध विषरूप हो जाता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे रामेणवैराग्य वर्णनन्नामसप्तमस्सर्गः ॥७॥

अनुक्रम

लक्ष्मीनैराश्य वर्णन

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर! लक्ष्मी देखने मात्र ही सुन्दर है । जब इसकी प्राप्ति होती है तब सद्‌गुणों का नाश कर देती है । जैसे विष की बेल देखने मात्र ही सुन्दर होती है और स्पर्श करने से मार डालती है वैसे ही लक्ष्मी की प्राप्ति होने से जीव आत्मपद से वंचित हो महादीन हो जाता है ।जैसे किसी के घर में चिन्तामणि दबी हो तो उसको जब तक खोदकर वह नहीं लेता तब तक दरिद्री रहता है वैसे ही (अज्ञान से) ज्ञान बिना महादीन हो रहता है और आत्मानन्द को नहीं पा सकता । आत्मानन्द में विघ्न करनेवाली लक्ष्मी है । इसकी प्राप्ति से जीव अन्धा हो जाता है । हे मुनीश्वर! जब दीपक प्रज्वलित होता है तब उसका बड़ा प्रकाश दृष्टि आता है और जब बुझ जाता है तब प्रकाश का अभाव हो जाता है पर काजल रह जाता है; वैसे ही जब लक्ष्मी की प्राप्ति होती है तब बड़े भोग भुगाती है और तृष्णारूपी काजल उससे उपजता रहता है और जब लक्ष्मी का अभाव होता है तब तृष्णारूप वासना छोड़ जाती है । उस वासना (तृष्णा) से अनेक जन्म और मरण पाता है, कभी शान्ति नहीं पाता । हे मुनीश्वर! जब लक्ष्मी की प्राप्ति होती है, तब शान्ति के उपजानेवाले गुणों का नाश करती है । जैसे जब तक पवन नहीं चलता तब तक मेघ रहता है और जब पवन चलता है तो मेघ का अभाव हो जाता है वैसे ही लक्ष्मीजी की प्राप्ति होने से गुणों का अभाव होता है और गर्व की उत्पत्ति होती है । हे मुनीश्वर! जो शूर होकर अपने मुख से अपनी बड़ाई न करे सो दुर्लभ है और सामर्थ्यवान् हो किसी की अवज्ञा न करे सब में समबुद्‌धि राखे सो भी दुर्लभ है वैसे ही लक्ष्मीवान् होकर शुभ गुण हो सो भी दुर्लभ है । हे मुनीश्वर तृष्णारूपी सर्प के विष के बढ़ाने को लक्ष्मीरूपी दूध है उसे पीते, पवनरूपी भोग के आहार करते कभी नहीं अघाता । महामोहरूपी उन्मत्त हस्ती है उसके फिरने का स्थान पर्वत की अटवीरूपी लक्ष्मी है और सद्‌गुणरूप सूर्यमुखी कमल की

लक्ष्मी रात्रि है और भोगरूपी चन्द्रमुखी कमलों की लक्ष्मी चन्द्रमा है और वैराग्यरूप कमलिनी का नाश करनेवाली लक्ष्मी बरफ है और ज्ञानरूपी चन्द्रमा का आच्छादन करनेवाली लक्ष्मी राहु है और मोहरूप उलूक की लक्ष्मी मानो रात्रि है। दुःख रूप बिजली की लक्ष्मी आकाश है और तृणरूपी बेलिको बढ़ाने वाली लक्ष्मी मेघ है। तृष्णारूप तरंग को लक्ष्मी समुद्र है, तृष्णारूप भँवर को लक्ष्मी कमलिनी है और जन्मके दुःखरूपी जल का लक्ष्मी गड्ढ़ा है।हे मुनीश्वर! देखने में यह सुन्दर लगती है। यह दुख का कारण है। जैसे खड्ग की धार देखने में सुन्दर होती है और स्पर्श करने से नाश करती है वैसे ही यह लक्ष्मी विचार रूपी मेघ का नाश करने को वायु है। हे मुनीश्वर! यह मेंने विचार करके देखा है कि इसमें कुछ भी सुख नहीं। सन्तोषरूपी मेघ का नाश करनेवाली लक्ष्मी शरत्काल है। मनुष्य में गुण तब तक दृष्टि आते हैं जब तक लक्ष्मी की प्राप्ति नहीं होती जब लक्ष्मी की प्राप्ति होती है तब शुभ गुण नष्ट हो जाते हैं। हे मुनीश्वर! लक्ष्मी को ऐसी दुःखदायक जानकर इसकी इच्छा मैंने त्याग दी है। यह भोग मिथ्या है जैसे बिजली प्रकट होकर छिप जाती है वैसे ही लक्ष्मी भी प्रकट होकर छिप जाती है। जैसे ही जल शीतलता से हिम होता है वैसे ही लक्ष्मी मनुष्य को जड़ सा बना देती है। इसको छलरूप जान कर मैंने त्याग दिया है।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे लक्ष्मीनैराश्य वर्णनन्नामाष्टमस्सर्गः ॥८॥

अनुक्रम

संसारसुखनिषेध वर्णन

रामजी बोले, हे मुनीश्वर! जैसे कमलपत्र के ऊपर जल की बूदें नहीं ठहरतीं वैसे ही लक्ष्मी भी क्षण भंगुर है। जैसे जल से तरंग होकर नष्ट होती हैं वैसे ही लक्ष्मी वृद्धि होकर नष्ट हो जाती है। हे मुनीश्वर! पवन को रोकना कठिन है पर उसे भी कोई रोकता है और आकाश का चूर्ण करना अति कठिन है उसे भौ कोई चूर्ण कर डालता है ओर बिजली का रोकना अति कठिन है सो उसे भी कोई रोकता है, परन्तु लक्ष्मी को कोई स्थिर नहीं रख सकता। जैसे शश की सींगों से कोई मार नहीं सकता और आरसी के ऊपर जैसे मोती नहीं ठहरता, जैसे तरंग की गाँठ नहीं पड़ती वैसे ही लक्ष्मी भी स्थिर नहीं रहती। लक्ष्मी बिजली की चमक सी है सो होती है और मिट भी जाती है। जो लक्ष्मी पाकर अमर होना चाहे उसे अति मूर्ख जानना और लक्ष्मी पाकर जो भोग की इच्छा करता है वह महा आपदा का पात्र है। उसका जीने से मरना श्रेष्ठ है। जीने की आशा मूर्ख करते हैं। जैसे स्त्री गर्भ की इच्छा अपने दुःख के निमित्त करती है वैसे ही जीने की आशा

पुरुष अपने नाशके निमित्त करते हैं। ज्ञानवान् पुरुष जिनकी परमपद में स्थिति है और उससे तृप्त हुए हैं, उनका जीना सुख के निमित्त है । उनके जीने से और के कार्य भी सिद्ध होते हैं । उनका जीना चिन्तामणि की नाईं श्रेष्ठ है । जिनको सदा भोग की इच्छा रहती है और आत्मपद से विमुख हैं उनका जीना जीना किसी के सुख के निमित्त नहीं है वह मनुष्यनहीं गर्दभ है । जैसे वृक्ष पक्षी पशु का जीना है वैसे उनका भी जीना है । हे मुनीश्वर! जो पुरुष शास्त्र पढ़ता है और उसने पाने योग्य पद नहीं पाया तो शास्त्र उसको भाररूप है । जैसे और भार होता है वैसे ही पड़नेका भी भार है और पड़कर विवाद करते हैं और उसके सार को नहीं ग्रहण करते वह भी भार है । हे मुनीश्वर! यह मन आकाश रूप है । जो मन में शान्ति न आई तो मन भी उसको भार है और जो मनुष्य शरीर को पाकर उसका अभिमान नहीं त्यागता तो यह शरीर पाना भी उसका निष्फल है । इसका जीना तभी श्रेष्ठ है जब आत्मपद को पावै अन्यथा जीना व्यर्थ है । आत्मपद की प्राप्ति अभ्यास से होती है । जैसे जल पृथ्वी खोदने से निकलता है वैसे ही आत्मपद की प्राप्ति भी अभ्यास से होती है । जो आत्मपद से विमुख होकर आशा की फाँसी में फँसे हैं वे संसार में भटकते रहते हैं । हे मुनीश्वर! जैसे सागर में तरंग अनेक उत्पन्न होकर नष्ट हो जाते हैं वैसे ही यह लक्ष्मी भी क्षणभंगुर है । इसको पाकर जो अभिमान करता है सो मूर्ख है । जैसे बिल्ली चूहे को पकड़ने के लिये पड़ी रहती है । वैसे ही उनको नरक में डालने के लिये घरमें पड़ी रहती है । जैसे अञ्जली में जल नहीं ठहरता वैसे ही लक्ष्मी भी नहीं ठहरती । ऐसी क्षणभंगुर लक्ष्मी ओर शरीर को पाकर जो भोग की तृष्णा करता है वह महामूर्ख है । वह मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ जीने की आशा करता है जैसे सर्प के मुख में मूर्ख मेढ़क पड़कर मच्छर खाने की इच्छा करता है वैसे ही जो जीव मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ भोग की वाञ्छा करता है वह महामूर्ख है । जब युवा अवस्था नदी के प्रवाह की नाईं चली जाती हैं । तब वृद्धावस्था आती है । उसमें महादुःख प्रकट होते हैं और शरीर जर्जर हो जाता है और मरता है । निदान एक क्षण भी मृत्यु इसको नहीं बिसारती । जैसे कामी पुरुष को सुन्दर स्त्री मिलती है तो उसके देखने का त्याग नहीं करता वैसे ही मृत्यु मनुष्य को देखे बिना नहीं रहती । हे मुनीश्वर! मूर्ख पुरुष का जीना दुःख के निमित्त है ।जैसे वृद्ध मनुष्य का जीना दुःख का कारण है वैसे ही मृत्यु मनुष्य को देखे बिना नहीं रहती । हे मुनीश्वर! मूर्ख पुरुष का जीना दुःख के निमित्त है । जैसे वृद्ध मनुष्य का जीना दुःख का कारण है वैसे ही ज्ञानी का 'जीना दुःख का कारण है । उसके बहुत जीने से मरना श्रेष्ठ है । जिस पुरुष ने मनुष्य शरीर पाकर आत्मपद पाने का यत्न नहीं किया उसने अपना आप नाश किया और वह आत्महत्यारा है । हे मुनीश्वर! यह माया बहुत सुन्दर भासती है पर अन्त में नष्ट हो जाती है । जैसे काठ को भीतर से घुन खा जाता है और बाहर से बहुत सुन्दर दीखता है वैसे ही यह जीव बाहर से

सुन्दर दृष्टि आता है और भीतर से उसको तृष्णा खा जाती है । जो मनुष्य पदार्थ को सत्य और सुखरूप जानकर सुख के निमित्त आश्रय करता है वह सुखी नहीं होता है । जैसे कोई नदी में सर्प को पकड़के पार उतरा चाहे तो पार नहीं उतर सकता, मूर्खता से डूबेगा, वैसे ही जो संसार के पदार्थों को सुखरूप जानकर आश्रय करता है सो सुख नहीं पाता, संसारसमुद्र में डूब जाता है हे मुनीश्वर! यह संसार इन्द्र धनुष की नाईं है । जैसे इन्द्रधनुष बहुत रंग का दृष्टि आता है और उससे कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता वैसे ही यह संसार भ्रममात्र है, इसमें सुख की इच्छा रखनी व्यर्थ है । इस प्रकार जगत् को मैंने असत् रूप जानकर निर्वासनिक होने की इच्छा की है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे संसारसुखनिषेध-वर्णनन्नाम नवमस्सर्गः ॥९॥

अनुक्रम

अहंकारदुराशा वर्णन

श्रीरामजी बोले, हे मुनीश्वर! अहंकार अज्ञान से उदय हुआ है । यह महादुष्ट है और यही परम शत्रु है । उसने मुझको दबा डाला है पर मिथ्या है और सब दुःखों की खानि है । जब तक अहंकार है तब तक पीड़ा की उत्पत्ति का अभाव कदाचित् नहीं होता । हे मुनीश्वर जो कुछ मैंने अहंकार से भजन और पुण्य किया,जो कुछ लिया दिया और जो कुछ किया वह सब व्यर्थ है । इससे परमार्थ की कुछ सिद्धि नहीं है । जैसे राख में आहुति धरी व्यर्थ हो जाती है वैसे ही मैं इसे जानता हूँ । जितने दुःख हैं उनका बीज अहंकार है । जब इसका नाश हो तब कल्याण हो । इससे आप उसकी निवृत्ति का उपाय कहिऐ । हे मुनीश्वर! जो वस्तु सत्य है इसके त्याग करने में दुःख होता है और जो वस्तु नाशवान् है और भ्रम से दीखती है उसके त्याग करने में आनन्द है । शान्तिरूप चन्द्रमा के आच्छादन करने को अहंकाररूपी राहु है । जब राहु चन्द्रमा को ग्रहण करता है तब उसकी शीतलता और प्रकाश ढक जाता है वैसे ही जब अहंकार बढ़ जाता है तब समता ढक जाती है । जब अहंकाररूपी मेघ गरजके वर्षता है तब तृष्णारूपी कण्टकमञ्जरी बढ़ जाती है और कभी नहीं घटती । जब अहंकार का नाश हो तब तृष्णा का अभाव हो । जैसे जब तक मेघ है तब तक बिजली है; जब विवेक रूपी पवन चले तब अहंकाररूपी मेघ का अभाव होकर तृष्णारूपी बिजली नष्ट हो जाती है और जैसे जब तक तेल और बाती है तब तक दीपक का प्रकाश है जब तेल बाती का नाश होता है तब दीपक का प्रकाश भी नष्ट हो जाता है वैसे ही जब अहंकार का नाश हो तब तृष्णा का भी नाश होता है । हे मुनीश्वर! परम दुःख का कारण अहंकार है । जब अहंकार का नाश हो जाता हो तब दुःख

का भी नाश हो जाय । हे मुनीश्वर! यह जो मैं राम हूँ सो नहीं और इच्छा भी कुछ नहीं, क्योंकि मैं नहीं तो इच्छा किसको हो? और इच्छा हो तो यही हो कि अहंकार से रहित पदकी प्राप्ति हो । जैसे जनेन्द्र को अहंकार का उत्थान नहीं हुआ वैसा मैं होऊँ ऐसी मुझको इच्छा है । हे मुनीश्वर! जैसे कमल को बरफ नष्ट करता है वैसे ही अहंकार ज्ञान का नाश करता है! जैसे व्याध जाल से पक्षी को फँसाता है और उससे पक्षी दीन हो जाते हैं वैसे ही अहंकार रूपी व्याध ने तृष्णारूपी जाल डाल कर जीवों को फँसाया है उससे वह महादीन हो गये हैं जैसे पक्षी अन्न के दाने सुखरूप जानकर चुगने आता है फिर चुगते चुगते जाल में फँस बन्धन से दीन हो जाता है वैसे ही यह जीव विषयभोग की इच्छा करने से तृष्णारूपी जाल में फँसकर महादीन हो जाता है । इससे हे मुनीश्वर! मुझसे वही उपाय कहिये जिससे अहंकार का नाश हो । जब अहंकार का नाश होगा तब मैं परमसुखी हूँगा । जैसे विन्ध्याचल पर्वत के आश्रय से उन्मत्त हस्ती गर्जते हैं वैसे ही अहंकाररूपी विन्ध्याचल पर्वत के आश्रय से मनरूपी उन्मत्त हस्ती नाना प्रकार के संकल्प विकल्परूपी शब्द करता है । इससे आप वही उपाय कहिये जिससे अहंकार का नाश हो जो अकल्याण का मूल है । जैसे मेघ का नाश करनेवाला शरत्काल है वैसे ही वैराग्य का नाश करनेवाला अहंकार है । मोहादिक विकाररूप सर्पों के रहने का अहंकाररूपी बिल है और वह कामी पुरुषों की नाईं है जैसे कामी पुरुष काम को भोगता है और फूल की माला गले में डालके प्रसन्न होता है वैसे ही तृष्णारूपी तागा है और मनरूपी फूल हैं सो तृष्णारूपी तागे के साथ गुहे हैं सो अहंकाररूपी कामी पुरुष उनको गले में डालता है और प्रसन्न होता है । हे मुनीश्वर! आत्मारूपी सूर्य है उसका आवरण करनेवाला मेघरूपी अहंकार है । जब ज्ञानरूपी शरत्काल आता है तब अहंकार रूपी मेघ का नाश हो जाता है और तृष्णारूपी तुषार का भी नाश होता है । हे मुनीश्वर! यह निश्चय कर मैंने देखा है कि जहाँ अहंकार है वहाँ सब आपदाएँ आकर प्राप्त होती हैं जैसे समुद्र में सब नदी आकर प्राप्त होती हैं वैसे ही अहंकार से सब आपदाओं की प्राप्ति होती है । इससे आप वही उपाय कहिये जिससे अहंकार का नाश हो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्य प्रकरणे अहंकारदुराशावर्णनन्नाम दशमस्सर्गः ॥१०॥

अनुक्रम

चित्तदौरात्म्य वर्णन

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर! मेरा चित्त काम, क्रोध, लोभ, मोह, तृष्णादिक दुःख से जर्जरीभूत हो गया है और महापुरुषों के गुण जो वैराग्य, विचार, धैर्य और सन्तोष हैं उनकी ओर नहीं

जाता - सर्वदा विषय की गरद में उड़ता है । जैसे मोर का पंख पवन में नहीं ठहरता वैसे ही यह चित्त सर्वदा भटका फिरता है पर कुछ लाभ नहीं होता । जैसे श्वान द्वार द्वार पर भटकता फिरता है वैसे ही यह चित्त पदार्थों के पाने के निमित्त भटकता फिरता है पर प्राप्त कुछ नहीं होता और जो कुछ प्राप्त होता है उससे तृप्त नहीं होता बल्कि अतःकरण में तृष्णा बनी रहती है ।जैसे पिटारे में जल भरिये तो वह पूर्ण नहीं होता, क्योंकि छिद्रों से जल निकल जाता है और पिटारा शून्य का शून्य रहता है वैसे ही चित्त भोग और पदार्थों से संतुष्ट नहीं होता सदा तृष्णा ही रहती है । हे मुनीश्वर! यह चित्तरूपी महामोह का समुद्र है; उसमे तृष्णारूपी तरंगें उठती ही रहती हैं, कभी स्थिर नहीं होतीं । जैसे समुद्र में तीक्ष्ण तरंगों से तट के वृक्ष बह जाते हैं वैसे ही चित्तरूपी समुद्र में विषयी बह जाते हैं । वासनारूपी तरंग के वेग से मेरा अचल स्वभाव चलायमान हो गया है : इसलिये इस चित्त से मैं महादीन हुआ हूँ । जैसे जाल में पड़ा हुआ पक्षी दीन हो जाता है वैसे ही चित्तरूप धीवर के वासनारूपी जाल में बँधा हुआ मैं दीन हो गया हूँ । जैसे मृग के समूह से भूली मृगी अकेली खेदवान् होती है वैसे ही में आत्मपद से भूला हुआ खेदवान् हुआ हूँ । हे मुनीश्वर! यह चित्त सदा क्षोभवान् रहता है, कभी स्थिर नहीं होता । जैसे क्षीरसमुद्र मन्दराचल से क्षोभवान् हुआ था वैसे ही यह चित्त संकल्प-विकल्प से खेद पाता है । जैसे पिंजरे में आया सिंह पिंजरे ही में फिरता है वैसे ही वासना में आया चित्त स्थिर नहीं होता । हे मुनीश्वर! जैसे भारी पवन से सूखा तृण दूर से जा पड़ता है वैसे ही इस चित्तरूपी पवन ने मुझको आत्मानन्द से दूर फेंका है जैसे सूखे तृण को अग्नि जलाती है वैसे ही मुझको चित्त जलाता है । जैसे अग्नि से धूम निकलता है वैसे ही चित्तरूपी अग्नि से तृष्णारूपी धूम निकलता है उससे मैं परम दुःख पाता हूँ । यह चित्त हंस नहीं बनता । जैसे राजहंस मिले हुए दूध और जल को भिन्न भिन्न करता है उसकी नाईं मैं अनात्मा से अज्ञान के कारण एक हो गया हूँ, उसको भिन्न नहीं कर सकता और जब आत्मपद पाने का यत्न करता हूँ तब अज्ञान उसे प्राप्त नहीं करने देता । जैसे नदी का प्रवाह समुद्र में जाता है उसको पहाड़ सीधे नहीं चलने देता और समुद्र की ओर नहीं जाने देता वैसे ही मुझको चित्त आत्मा की ओर से रोकता है । वह परम शत्रु है । हे मुनीश्वर! वही उपाय कहिये जिससे चित्तरूपी शत्रु का नाश हो । जैसे मृतक शरीर को श्वान खाते हैं वैसे ही तृष्णा मुझे खा रही है । आत्मा के ज्ञान बिना मैं मृतक समान हूँ । जैसे बालक अपनी परछाहीं को वैताल मानकर भय पाता है और जब विचार करने में समर्थ होता है तब वैताल का भय नहीं होता वैसे ही चित्तरूपी वैताल ने मेरा स्पर्श किया है उससे मैं भय पाता हूँ । इससे आप वही उपाय कहिये जिससे चित्तरूपी वैताल नष्ट हो जावे । हे मुनीश्वर! अज्ञान से मिथ्या वैताल चित्त में दृढ़ हो रहा है उसके नाश करने को मैं समर्थ नहीं हो सकता । अग्नि में बैठना, बड़े पर्वत के ऊपर जाना और वज्र का चूर्ण करना मैं

सुगम मानता हूँ परन्तु चित्त का जीतना महाकठिन है । चित्त सदा ही चलायमान स्वभाववाला है । जैसे थम्भ से बाँधा हुआ वानर कभी स्थिर नहीं बैठता वैसे ही चित्त वासना के मारे कभी स्थिर नहीं होता । हे मुनीश्वर! बड़े समुद्र का पान कर जाना, अग्नि का भक्षण करना और सुमेरु का उलंघन करना सुगम है, परन्तु चित्त का जीतना महाकठिन है जो सदा चलरूप है जैसे समुद्र अपना द्रवी स्वभाव कदाचित् नहीं त्यागता, महाद्रवीभूत रहता है और उससे नाना प्रकार के तरंग उठते हैं वैसे ही चित्त भी चञ्चल स्वभाव को कभी नहीं त्यागता और नाना प्रकार की वासना उपजती रहती हैं । चित्त बालक की नाईं चञ्चल है, सदा विषय की ओर धावता है; कहीं-कहीं पदार्थ की प्राप्ति होती परन्तु भीतर सदा चञ्चल रहता है । जैसे सूर्य के उदय होने से दिन होता है और अस्त होने से दिन का नाश होता है, वैसे ही चित्त के उदय होने से त्रिलोकी की उत्पत्ति है और चित्त के लीन होने से जगत् भी लीन हो जाता है । हे मुनीश्वर! चित्तरूपी समुद्र है, वासनारूपी जल है उसमें छलरूपी सर्प जब जीव उसके निकट जाता है तब भोगरूपी सर्प उसको काटता है और तृष्णारूपी विष स्पर्श करता है उससे मरता है । हे मुनीश्वर! भोग को सुखरूप जान कर चित्त दौड़ता है पर वह भोग दुःख का कारण है । जैसे तृण से आच्छादित खाई को देखकर मूर्ख मृग खाने दौड़ता है तो खाईं में गिरकर दुःख पाता है वैसे ही चित्तरूपी मृग भोग को सुखकर जानकर भोगने लगता है तब तृष्णा रूपी खाईं में गिर पड़ता है और जन्म जन्मान्तर में दुख भोगता रहता है । हे मुनीश्वर! यह चित्त कभी कभी बड़ा गम्भीर भी हो बैठता है । जैसे चील पक्षी आकाश में ऊँचे फिरता है पर जब पृथ्वी पर माँस देखता है तो वहाँ से पृथ्वी पर आकर माँस लेता है वैसे ही यह चित्त तब तक उदार है जब तक भोग नहीं देखता और जब विषय देखता है तब आसक्त हो विषय में गिर जाता है । यह चित्त वासनारूपी शय्या में सोया रहता है और आत्मपद की ओर नहीं जागता । मैं इस चित्त के जाल में पड़ गया हूँ । वह कैसा जाल है कि उसमें वासनारूपी सूत है, संसार की सत्यतारूपी गाँठ है और भोगरूपी चून है जिसको देखकर मैं फँसा हूँ और कभी पाताल में और कभी आकाश में वासनारूपी रस्सी से बँधा घटीयन्त्र की नाईं फिरता हूँ । इससे हे मुनीश्वर! तुम वही उपाय कहो जिससे चित्तरूपी शत्रु को जीतूँ । अब मुझको किसी भोग की इच्छा नहीं और जगत की लक्ष्मी मुझको विरस भासती है । जैसे चन्द्रमा बादल की इच्छा नहीं करता पर चतुरमास में आच्छादित हो जाता है वैसे ही मैं भोग की इच्छा नहीं करता और जगत् की लक्ष्मी भी नहीं चाहता पर मेरा चित्त ही मेरा परमशत्रु है । महापुरुष जब इसके जीतने का यत्न करते हैं तब परमपद पाते हैं, इससे मुझे वही उपाय कहो जिससे मन को जीतूँ जैसे पर्वत पर के वन पर्वत के आश्रय से रहते हैं वैसे ही सब दुःख इसके आश्रय से रहते हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे चित्तदौरात्म्य वर्णनन्नामैकादशस्सर्गः ॥११॥

अनुक्रम

तृष्णागारुड़ीवर्णन

श्रीरामजी बोले कि हे ब्राह्मण! चेतनरूपी आकाश में तृष्णारूपी रात्रि आई है और उसमें काम, क्रोध, लोभ, मोहादिक उल्लू विचरते हैं । जब ज्ञानरूपी सूर्य उदय हो तब तृष्णारूपी रात्रि का अभाव हो जावे और जब रात्रि नष्ट हो तब मोहादिक उलूक भी नष्ट हों । जैसे जब सूर्य उदय होता है तब बरफ उष्ण हो पिघल जाती है वैसे ही सन्तोषरूपी रसको तृष्णारूपी उष्णता पिघला देती है । आत्मपद से शून्य चित्त भयानक वन है, उसमें तृष्णारूपी पिशाचिनी मोहादिक परिवार को अपने साथ लिये फिरती रहती है और प्रसन्न होती है । हे मुनीश्वर! चित्तरूपी पर्वत है उसके आश्रय तृष्णारूपी नदी का प्रवाह चलता है और नाना प्रकार के संकल्परूपी तरंग को फैलाता है । जैसे मेघ को देखकर मोर प्रसन्न होता है वैसे ही तृष्णारूपी मोर भोगरूपी मेघ को देखकर प्रसन्न होता है इससे सब दुःखों का मूल तृष्णा है । जब मैं किसी सन्तोषादि गुण का आश्रय करता हूँ तब तृष्णा उसको नष्ट कर देती है । जैसे सुन्दर सारंगी को चूहा काट डालता है । वैसे ही सन्तोषादि गुणों को तृष्णा नष्ट करती है । हे मुनीश्वर! सबसे उत्कृष्ट पद में विराजने का मैं यत्न करता हूँ पर तृष्णा मुझे विराजने नहीं देती । जैसे जाल में फँसा हुआ पक्षी आकाश में उड़ने का यत्न करता है परन्तु उड़ नहीं सकता वैसे ही अनात्म से आत्मपद को प्राप्त नहीं हो सकता ।स्त्री, पुरुष, पुत्र और कुटुम्ब का उसने जाल बिछाया है उसमें फँसा हूँ निकल नहीं सकता । और आशारूपी फाँसी में बँधा हुआ कभी ऊर्ध्व को जाता हूँ कभी अधःपात होता हूँ, घटीयन्त्र की नाई मेरी गति है । जैसे इन्द्र का धनुष मलीन मेघ में बड़ा और बहुत रंगों से भरा होता है परन्तु मध्य में शून्य है वैसे ही तृष्णा मलिन अतःकरण में होती है सो बढ़ी हुई है और सद्गुणों से रहित है । यह उपर से देखने मात्र सुन्दर है परन्तु इससे कुछ कार्य नहीं सिद्ध होता । हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी मेघ है उससे दुःखरूपी बूँदे निकलती हैं और तृष्णारूपी काली नागिन है उसका स्पर्श तो कोमल है परन्तु विष से पूर्ण है उसके डसने से मृतक हो जाता है । तृष्णारूपी बादल है सो आत्मरूपी सूर्य के आगे आवरण करता है । जब ज्ञानरूपी पवन चले तब तृष्णारूपी बादल का नाश होकर आत्मपद का साक्षात्कार हो । ज्ञानरूपी कमल को संकोच करने वाली तृष्णारूपी निशा है । उस तृष्णारूपी महाभयानक कालीरात्रि में बड़े धीरवान् भी भयभीत होते हैं और नयनवालों को भी अन्धा कर डालती है । जब यह आती है तब वैराग्य और अभ्यासरूपी नेत्र को अन्धा कर डालती है । अर्थात् सत्य असत्य विचारने नहीं देती । हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी डाकिनी है वह सन्तोषादिक गुणों को मार डालती है । तृष्णारूपी कन्दरा है उसमें मोहरूपी उन्मत्त

हाथी गर्जते हैं । तृष्णारूपी समुद्र है उसमें आपदारूपी नदी आकर प्रवेश करती है इससे वही उपाय मुझसे कहिये जिससे तृष्णारूपी दुःख से छूटूँ । हे मुनीश्वर! अग्नि और खंग के प्रहार और खंग के प्रहार और इन्द्र के वज्र से भी ऐसा दुःख नहीं होता जैसा दुःख तृष्णा से होता है सो तृष्णा के प्रहार से घायल हुआ मैं बड़े दुःख को पाता हूँ और तृष्णारूपी दीपक जलता है उसमें सन्तोषादिक पतंग जल जाते हैं । जैसे जल में मछली रहती है सो जल में कंकड़ रेत आदि को देख माँस जानकर मुख में लेती है उससे उसका कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता वैसे ही तृष्णा भी जो कुछ पदार्थ देखती है उसके पास उड़ती है और तृप्ति किसी से नहीं होती । तृष्णारूपी एक पक्षिणी है सो इधर उधर उड़ जाती है और स्थिर कभी नहीं होती । तृष्णारूपी वानर है वह कभी किसी वृक्ष पर और कभी किसी के ऊपर जाता है स्थिर कभी नहीं होता । जो पदार्थ नहीं प्राप्त होता उसके निमित्त यत्न करता है और भोग से तृप्त कदाचित् नहीं होता । जैसे घृत की आहुति से अग्नि तृप्त नहीं होती वैसे ही जो पदार्थ प्राप्त योग्य नहीं है उसकी ओर भी तृष्णा दौड़ती है शान्ति नहीं पाती । हे मुनीश्वर! तृष्णारूपी उन्मत्त नदी है वह बहे हुए पुरुष को कहाँ से कहाँ ले जाती है । कभी तो पहाड़ के बाजू में ले जाती और कभी दिशा में ले जाती है । तृष्णारूपी नदी है उसमें वासनारूपी अनेक तरंग उठते हैं कदाचित् मिटते नहीं । तृष्णारूपी नटिनी है और जगतरूपी अखाड़ा उसने लगाया है उसको सिर ऊँचा कर देखती है और मूर्ख बड़े प्रसन्न होते हैं जैसे सूर्य के उदय होने से सूर्यमुखी कमल खिलकर ऊँचा होता है वैसे ही मूर्ख भी तृष्णा को देखकर प्रसन्न होता है । तृष्णारूपी वृद्ध स्त्री है जो पुरुष इसका त्याग करता है तो उसके पीछे लगी फिरती है कभी उसका त्याग नहीं करती । तृष्णारूपी डोर है उसके साथ जीवरूपी पशु बँधे हुए भ्रमते फिरते हैं । तृष्णा दुष्टिनी है जब शुभगुण देखती है तब उसको मार डालती है । उसके संयोग से मैं दीन होता हूँ । जैसे पपीहा मेघ को देखकर प्रसन्न होता है और बूँद ग्रहण करने लगता है और मेघ को जब पवन ले जाता है तब पपीहा दीन हो जाता है वैसे ही तृष्णा जब शुभ गुणों का नाश करती है तब मैं दीन हो जाता हूँ । हे मुनीश्वर! जैसे सूखे तृण को पवन उड़ाकर दूर से दूर डालता है वैसे ही तृष्णारूपी पवन ने मुझको दूर से दूर डाल दिया है और आत्मपद से दूर पड़ा हूँ । हे मुनीश्वर! जैसे भँवरा कमल के ऊपर और कभी नीचे बैठता है और कभी आसपास फिरता है स्थिर नहीं होता वैसे ही तृष्णारूपी भँवरा संसाररूपी कमल के नीचे ऊपर फिरता है कदाचित् नहीं ठहरता । जैसे मोती के बाँस से अनेक मोती निकलते हैं वैसे ही तृष्णारूपी बाँस से जगत् रूपी अनेक मोती निकलते हैं उससे लोभी का मन पूर्ण नहीं होता । तृष्णारूपी डब्बे में अनेक दुःखरूपी रत्न भरे हैं इससे आप वही उपाय कहिये जिससे तृष्णा निवृत्त हो । हे मुनीश्वर! यह वैराग्य से निवृत्त होती है और किसी उपाय से नहीं निवृत्त होती । जैसे अन्धकार का प्रकाश से नाश होता है और किसी उपाय से नहीं

होता वैसे ही तृष्णा का नाश और उपाय से नहीं होता । तृष्णारूपी हल गुणरूपी पृथ्वी को खोद डालता है और तृष्णारूपी बेलि गुणरूपी रस को पीती है । तृष्णारूपी धूलि है वह अन्तःकरणरूपी जल में उछल के मलीन करती है । हे मुनीश्वर! जैसे वर्षाकाल में नदी बढ़ती है और फिर घट जाती है वैसे ही जब इष्ट भोगरूपी जल प्राप्त होता है तब हर्ष से बढ़ती है और जब वह जल घट जाता है तब सूख कर क्षीण हो जाती है । हे मुनीश्वर! इस तृष्णा ने मुझको दीन किया है ।जैसे सूखे तृण को पवन उड़ा ले जाता है वैसे ही मुझको भी तृष्णा उड़ाती है । इससे आप वही उपाय कहिये जिससे तृष्णा का नाश होकर आत्मपद की प्राप्ति हो और दुःखों का नाश होकर आनन्द हो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे तृष्णागारुड़ीवर्णनन्नाम द्वादशस्सर्गः ॥१२॥

अनुक्रम

देहनैराश्य वर्णन

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर! यह अमंगलरूप शरीर, जो जगत में उत्पन्न हुआ है बड़ा अभाग्यरूप है और सदा विकारवान् माँस मज्जा से पूर्ण और अपवित्र है । इससे कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता इसलिये इस विकाररूप शरीरकी मैं इच्छा नहीं रखता । यह शरीर न अज्ञ है और न तज्ञ है--अर्थात् न जड़ है और न चैतन्य है । जैसे अग्नि के संयोग से लोहा अग्निवत् होता है सो जलाता भी है परन्तु आप नहीं जलता वैसे ही यह देह न जड़ है न चैतन्य है । जड़ इस कारण नहीं है कि इससे कार्य भी होता और चैतन्य इस कारण नहीं कि इसको आपसे कुछ ज्ञान नहीं होता । इसलिये मध्यमभाव में है, क्योंकि चैतन्य आत्मा इस में व्याप रहा है, पर आपतो अपवित्ररूप अस्थि, माँस, रुधिर, मूत्र और बिष्ठा से पूर्ण और विकारवान् है । ऐसी देह दुःख का स्थान है । इष्ट के पाने से हर्षवान् और अनिष्ट के पाने से शोकवान् होती है, इससे ऐसे शरीर की मुझको इच्छा नहीं । यह अज्ञान से उपजती है । हे मुनीश्वर! ऐसे अमंगलरूपी शरीर में ही अहंपन फुरता है सो दुःख का कारण है । यह संसार में स्थित होकर नाना प्रकार के शब्द करता है । जैसे कोठरी में बैठा हुआ बिलाव नाना प्रकार के शब्द करता है वैसे ही अहंकाररूपी बिलाव देह में बैठा हुआ अहं करता है चुप कदाचित् नहीं रहता । हे मुनीश्वर! जि किसी के निमित्त शब्द हो वही सुन्दर है अन्यथा सब शब्द व्यर्थ हैं । जैसे जय के निमित्त ढोल का शब्द सुन्दर होता है वैसे ही अहंकार से रहित जो पद है वही शोभनीय है और सब व्यर्थ हैं । शरीररूपी नौका भोगरूपी रेत में पड़ी है, इसलिये इसका पार होना कठिन है । जब वैराग्यरूपी जल बढ़े और प्रवाह हो और अभ्यासरूपी पतवार का बल लगे तब संसार के

पाररूपी किनारे पर पहुँचे । शरीररूपी बेड़ा है जो संसाररूपी समुद्र और तृष्णारूपी जल में पड़ा है जिसका बड़ा प्रवाह है और भोगरूपी उसमें मगर हैं सो शरीररूपी बेड़े को पार नहीं लगने देते । जब शरीररूपी बेड़े को वैराग्यरूपी वायु और अभ्यासरूपी पतवार का बल लगे तब शरीररूपी बेड़ा पार हो । हे मुनीश्वर! जिस पुरुष ने उपाय करके ऐसे बेड़े को संसार समुद्र से पार किया है वही सुखी हुआ है और जिसने नहीं किया वह परम आपदा को प्राप्त होता है वह उस बेड़े से उलटा डूबेगा क्योंकि उस शरीररूपी बेड़े का तृष्णारूपी छिद्र है । उससे संसार समुद्र में डूब जाता है और भोगरूपी मगर इसको खा लेता है । यही आश्चर्य है कि देह अपना आप नहीं और मनुष्य मूर्खता करके आपको देह मानता है और तृष्णारूपी छिद्र करके दुःख पाता है । शरीररूपी वृक्ष है उसमें भुजारूपी शाखा, उँगली पत्र, जंघा स्तम्भ, माँसरूपी अन्दर भोगवासना उसकी जड़ और सुख दुःख इसके फल हैं । तृष्णारूपी घुन उस शरीररूपी वृक्ष को खाता रहता है । जब उसमें श्वेत फूल लगे तो नाश का समय आता है अर्थात् मृत्यु के निकट होता है । शरीररूपी वृक्ष की भुजारूपी शाखा हैं और हाथा पाँव पत्र हैं । टखने इसके गुच्छे और दाँत फूल हैं; जंघास्तंभ हैं और कर्मजल से बढ़ जाता है । जैसे वृक्ष से जल चिकटा निकलता है वैसे ही जल शरीर के द्वारा निकलता रहता है । इसमें तृष्णारूपी विष से पूर्ण सर्पिणी रहती है जो कामना के लिये इस वृक्ष का आश्रय लेता है तो तृष्णारूपी सर्पिणी उसको डसती है और उस विष से वह मर जाता है । हे मुनीश्वर! ऐसे अमंगलरूपी शरीर वृक्ष की इच्छा मुझको नहीं है । यह परम दुःख का कारण है । जब यह पुरुष अपने परिवार अर्थात् देह, इन्द्रियाँ, प्राण, मन, बुद्धि और इनमें जो अहमभाव है इसका त्याग करे तब मुक्ति हो अन्यथा मुक्ति नहीं होती । हे मुनीश्वर! जो श्रेष्ठ पुरुष हैं वे पवित्र स्थान में ही रहते हैं अपवित्र में नहीं रहते । वह अपवित्र स्थान यह देह है और इसमें रहनेवाला भी अपवित्र है । आस्थारूपी इस घर में ईंटें हैं रुधिर, मूत्र और विष्ठा का गारा लगा है और माँस की कहगिल की है । अहंकाररूपी इसमें श्वपच रहता है, तृष्णारूपी श्वपचिनी उसकी स्त्री और काम क्रोध, मोह और लोभ इसके पुत्र हैं और आँतों और विष्ठादि से भरा हुआ है । ऐसे अपवित्र स्थान अमंगलरूपी शरीर को मैं अंगीकार नहीं करता यह शरीर रहे चाहे न रहे इसके साथ अब मुझे कुछ प्रयोजन नहीं । हे मुनीश्वर! शरीररूपी बड़ा गृह है और उसमे इन्द्रियरूपी पशु हैं । जब कोई उस गृह में बैठता है तब बड़ी आपदा को प्राप्त होता है । तात्पर्य यह है कि जो इसमें अहंभाव करता है तो इन्द्रियरूपी पशु हैं । जब कोई उस गृह में पैठता है तब बड़ी आपदा को प्राप्त होता है । तात्पर्य यह कि जो इसमें अहंभाव करता है तो इन्द्रियरूपी पशु विषयरूपी सींगोंसे मारते हैं और तृष्णारूपी धूलि उसको मलीन करती है । हे मुनीश्वर! ऐसे शरीर को मै अंगीकार नहीं करता जिसमें सदा कलह रहती है और ज्ञानरूपी सम्पदा प्रवेश नहीं होती । शरीररूपी गृह में तृष्णारूपी चण्डी स्त्री रहती है: वह

इन्द्रियरूपी द्वार से देखती रहती और सदा कल्पना करती रहती है उससे शम दमादिरूप सम्पदा का प्रवेश नहीं होता । उस घर में एक सुषुप्तिरूप शय्या है जब उसके ऊपर वह विश्राम करता है तब वह कुछ सुख पाता है, परन्तु तृष्णा का परिवार अर्थात् काम, क्रोधादिक विश्राम नहीं करने देते । हे मुनीश्वर! ऐसे दुःख के मूल शरीररूपी गृह की इच्छा मैंने त्याग दी है । यह परम दुःख देनेवाला है, इसकी इच्छा मुझको नहीं । हे मुनीश्वर! शरीररूपी वृक्ष है उसमे तृष्णा रूपी काकिनी आकर स्थित हुई है । जैसे काकिनी नीच पदार्थ के पास उड़ती है वैसे ही तृष्णा भोग आदिक मलिन पदार्थों के पास उड़ती है । तृष्णा बन्दरी की नाईं शरीररूपी वृक्ष को हिलाती है, स्थिर नहीं होने देती । जैसे उन्मत्त हाथी कीच में फँस जाता है तब निकल नहीं सकता और खेदवान् होता है वैसे ही अज्ञानरूपी मद से उन्मत्त हुआ जीव शरीररूपी कीच में फँसा है सो निकल नहीं सकता, पड़ा हुआ दुःख पाता है । ऐसा दुःख देनेवाला शरीर है उसको मैं अंगीकार नहीं करता । हे मुनीश्वर! यह शरीर अस्थि, माँस, रुधिर से पूर्ण अपवित्र है । जैसे हाथी के कान सदा हिलते हैं, वैसे ही मृत्यु इसको हिलाती है। कुछ काल का विलम्ब है मृत्यु उसका ग्रास कर लेवेगी; इससे मैं शरीर को अंगीकार नहीं करता हूँ । यह शरीर कृतघ्न है । भोग भुगतता है और बड़े ऐश्वर्य को प्राप्त करता है, परन्तु मृत्यु इससे सखापन नहीं करता । जीव जीव इसको अकेला छोड़कर पर लोक जाता है । जीव इसके सुख निमित्त अनेक यत्न करता है, परन्तु संग में सदा नही रहता । ऐसे कृतघ्न शरीर को मैंने मन से त्याग दिया है । हे मुनीश्वर! और आश्चर्य देखिये कि यह इसी के लिये भोग करता है पर उसके साथ नहीं चलता । जैसे धूल से मार्ग नहीं भासता वैसे ही यह जीव जब चलने लगता है तब शरीर से क्षोभवान् होता और वासनारूपी धूलिसंयुक्त चलता है परन्तु दीखता नहीं कि कहाँ गया । जब परलोक जाता है तब बड़ा कष्ट होता है , क्योंकि शरीरके साथ इसने स्पर्श किया है । हे मुनीश्वर! जैसे जल की बूँद पत्र के ऊपर क्षणमात्र रहती है वैसे ही शरीर भी क्षणभंग है । ऐसे शरीर में आस्था करनी मूर्खता है और ऐसे शरीर के ऊपर उपकार करना भी दुःख के निमित्त है सुख कुछ नहीं । धनाढ्य इस शरीर से बड़े भोग भोगते हैं, परन्तु जरा अवस्था और मृत्यु दोनों की होती है, इसमें विशेषता कुछ नहीं । शरीर का उपकार करना और भोग भुगतना तृष्णा के कारण उलटा दुःखका कारण है जैसे कोई नागिनि को घर में रखकर दूध पिलावे तो अन्त में वह उसे काटकर मारेगी वैसे ही जिस जीव ने तृष्णारूपी नागिनि के साथ मित्रता की है वह मरेगा, क्योंकि नाशवन्त है । इसके निमित्त भोग भुगतने का यत्न करना मूर्खता है । जैसे पवन का वेग आता और जाता है वैसे ही यह शरीर भी आता और जाता है, इससे प्रीति करना दुःख का कारण है । जैसे कोई विरला मृग मरुस्थल की आस्था त्यागता है और सब पड़े भ्रमते हैं वैसे ही सब जीव इसकी आस्था में बँधे हुए हैं, इसका त्याग कोई बिरले ही ने किया है । हे मुनीश्वर! बिजली और

दीपक का प्रकाश भी आता जाता दीखता है, परन्तु इस शरीर का आदि अन्त नहीं दीखता कि कहाँ से आता है और कहाँ जाता है । जैसे समुद्र में बुद्बुदे उपजते और मिट जाते हैं उसकी आस्था करने से कुछ लाभ नही वैसे ही यह शरीर है इसकी आस्था करना योग्य नहीं । यह अत्यन्त नाशरूप है स्थिर कदाचित नहीं होता है । जैसे बिजली स्थिर नहीं होती वैसे ही शरीर भी स्थिर नहीं रहता इसलिए इसकी मैं आस्था नहीं करता । इसका अभिमान मैंने त्याग दिया है । जैसे कोई सूखे तृण को त्याग देता है वैसे ही मैंने अहंममता त्यागी है । हे मुनीश्वर! ऐसे शरीर को पुष्ट करना दुःख का निमित्त है । यह शरीर किसी अर्थ नहीं आता जलाने योग्य है । जैसे लकड़ी जलाने के सिवाय और काम में नहीं आती वैसे ही यह शरीर भी जड़ और गूँगा जलाने के अर्थ है । हे मुनीश्वर! जिस पुरुष ने काष्ठ रूपी शरीर को ज्ञानाग्नि से जलाया है उसका परम अर्थ सिद्ध हुआ है और जिसने नहीं जलाया उसने परम दुःख पाया है । हे मुनीश्वर! न मैं शरीर हूँ, न मेरा शरीर है; न इसका मैं हूँ, न मेरा यह है; अब मुझको कामना कोई नहीं, मैं निराशी पुरुष हूँ और शरीर से मुझको कुछ प्रयोजन नहीं इसलिये आप वही उपाय कहिये जिससे मैं परमपद पाऊँ । हे मुनीश्वर! जिस पुरुष ने शरीर का अभिमान है वह परम दुखी है । जितने दुःख हैं वे शरीर के संयोग से होते हैं । मान-अपमान, जरा-मृत्यु, दम्भ-भ्रान्ति, मोह-शोक आदि सर्व विकार देह के संयोग से होते हैं जिनको देह में अभिमान है उनको धिक्कार है और सब आपदा भी उन्ही को प्राप्त होती हैं । जैसे समुद्र में नदी प्रवेश करती है वैसे ही देहाभिमान में सर्व आपदा प्रवेश करती हैं । जिसको देह का अभिमान नहीं है वह मनुष्यों में उत्तम और वन्दना करने के योग्य है । ऐसे को मेरा भी नमस्कार है और सर्व सम्पदा भी भी उसी को प्राप्त होती हैं । जैसे मानसरोवर में सब हंस आकर रहते हैं वैसे ही जहाँ देहाभिमान नहीं रहा वहाँ सर्व सम्पदा आ रहती हैं । हे मुनीश्वर! जैसे अपनी छाया में बालक वैताल कल्पता है और उससे भय पाता है पर जब उसको विचार की प्राप्ति होती है तब वैताल का अभाव हो जाता है वैसे ही अज्ञान से मुझको अहंकाररूपी पिशाच ने शरीर में दृढ़ आस्था बताई है । इसलिये आप वही उपाय कहिये जिससे अहंकाररूपी पिशाच का नाश हो और आस्थारूपी फाँसी टूटे । हे मुनीश्वर! प्रथम मुझको अज्ञान से अहंकाररूपी पिशाच का संयोग था; उसके अनन्तर शरीर में आस्था उपजी जैसे बीज से प्रथम अंकुर होता है फिर अंकुर से वृक्ष होता है वैसे ही अहंकार से शरीर की आस्था होती है । हे मुनीश्वर! जैसे बालक छाया में वैताल देखकर दीनता को प्राप्त होता है वैसे ही अहंकाररूपी पिशाच ने मुझको दीन किया है । वह अहंकाररूपी पिशाच अविचार से सिद्ध है । जैसे प्रकाश से अन्धकार नाश हो जाता है वैसे ही विचार करने से अहंकार नष्ट हो जाता है । हे मुनीश्वर! जिस शरीर में आस्था रक्खी है वह जल के प्रवाह की नाईं है, स्थिर नहीं होता । जैसे बिजली का चमकना स्थिर नहीं और गन्धर्व

नगरी की आस्था व्यर्थ है वैसे ही शरीर की आस्था करना व्यर्थ है । हे मुनीश्वर! जो शरीर की आस्था करके अहंकार करते हैं और जगत् के पदार्थों के निमित्त यत्न करते हैं वे महामूर्ख हैं । जैसे स्वप्न मिथ्या है वैसे ही यह जगत् मिथ्या है । जो उसको सत्य जानता है वह अपने बन्धन के निमित्त यत्न करता है । जैसे घुरान अर्थात् कुसवारी अपने बन्धन के निमित्त गुफा बनाती है और पतंग अपने नाश के निमित्त दीपक की इच्छा करता है वैसे ही अज्ञानी को अपने देह का अभिमान और भोग की इच्छा अपने ही नाश के निमित्त है । हे मुनीश्वर! मैं तो इस शरीर को अंगीकार नहीं करता । इस शरीर का अभिमान परम दुःख देनेवाला है जिसको देह का अभिमान नहीं रहा उसको भोग की इच्छा भी न रहेगी । इससे मैं निराश हूँ और मुझे परमपद की इच्छा है जिसके पाने से फिर संसार समुद्र की प्राप्ति न हो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे देहनैराश्य वर्णनन्नाम त्रयोदशस्सर्गः ॥१३॥

अनुक्रम

बाल्यावस्था वर्णन

रामजी बोले, हे मुनीश्वर! इस जीव को संसारसमुद्र में जन्म पाकर प्रथम बाल अवस्था प्राप्त होती है वह भी परम दुःख का मूल है । उससे वह परम दीन हो जाता है और इतने अवगुण इसमें आ प्रवेश करते हैं अर्थात् अशक्तता, मूर्खता, इच्छा, चपलता, दीनता, दुःख, संताप इतने विकार इसको प्राप्त होते हैं । यह बाल्यावस्था महा विकारवान् है ।बालक पदार्थ की ओर धावता है और एक वस्तु का ग्रहणकर दूसरी को चाहता है स्थिर नहीं रहता,फिर और में लग जाता है । जैसे वानर स्थिर नहीं बैठता और जो किसी पर क्रोध करता है तो भीतर से जलता है । वह बड़ी बड़ी इच्छा करता है, पर उसकी प्राप्ति नहीं होती, सदा तृष्णा में रहता है और क्षण में भयभीत हो जाता है, शान्ति प्राप्त नहीं होती । जैसे कदलीवन का हाथी जंजीर से बँधा हुआ दीन हो जाता है वैसे ही यह चैतन्य पुरुष बालक अवस्था से दीन हो जाता है वैसे ही यह चैतन्य पुरुष बालक अवस्था से दीन हो जाता है । वह जो कुछ इच्छा करता है सो विचार बिना है, उससे दुःख पाता है । यह मूढ़ गूँगी अवस्था है उससे कुछ सिद्धि नहीं होती और जो किसी पदार्थ की प्राप्ति होती है तो उसमें क्षणमात्र सुखी रहता है फिर तपने लगता है । जैसे तपती पृथ्वी पर जल डालिये तो एक क्षण शीतल होती है फिर उसी प्रकार से तपती है वैसे ही वह भी तपता रहता है । जैसे रात्रि के अन्त में सूर्य उदय होता है उससे उलूकादि कष्टवान् होते हैं वैसे ही इस जीव को स्वरूप के अज्ञान से बाल्यावस्था में कष्ट होता है । हे मुनीश्वर! जो

बालक अवस्था की संगति करता है वह भी मूर्ख है, क्योंकि वह विवेकरहित अवस्था है और सदा अपवित्र है और सदा पदार्थ की ओर धावती है । ऐसी मुढ़ और दीन अवस्था की मुझको इच्छा नहीं, उसमें जिस पदार्थ को देखता है उसकी ओर धावता है जैसे कुत्ता क्षण-क्षण में द्वार की ओर अपमान पाता है वैसे ही बालक अपमान पाता है । वैसे ही बालक अपमान पाता है । बालक को माता, पिता, बान्धव, अपने से बड़े बालक और पशु पक्षी का भी भय रहता है । हे मुनीश्वर! ऐसी दुःखरूपी अवस्था की मुझको इच्छा नहीं । जैसे स्त्रीके नयन और नदी का प्रवाह चञ्चल है उससे भी मन और बालक चञ्चल हैं और सब चञ्चलता बालक के कनिष्ठ हैं । हे मुनीश्वर! जैसे वेश्या का चित्त एक पुरुष में नहीं ठहरता वैसे ही बालक का चित्त एक पदार्थ में नहीं ठहरता और उसको यह विचार भी नहीं होता कि इस पदार्थ से मेरा नाश होगा वा कल्याण होगा । बालक ऐसी ही व्यर्थ चेष्टा करता है, सदा दीन रहता है और सुख-दुःख की इच्छा से तपायमान रहता है । जैसे ज्येष्ठ-आषाढ़ में पृथ्वी तपायमान होती है वैसे ही बालक तपता रहता है शान्ति कदाचित् नहीं पाता । जब विद्या पढ़ने लगता है तब गुरु से ऐसा भयभीत होता है जैसे कोई यम को देख भय पावे और जैसे गरुड़ को देख के सर्प डरे । जब शरीर में कोई कष्ट प्राप्त होता है तब भी वह बड़े दुःख को प्राप्त होता है और उस दुःख को निवारण नहीं कर सकता और सहने की भी सामर्थ्य नहीं होती, भीतर ही जलता है और मुख से कुछ बोल नहीं सकता । जैसे वृक्ष कुछ बोल नहीं सकता और जैसे पशु पक्षी दुःख पाते हैं, न कुछ कह सकते हैं, न दुख का निवारण कर सकते हैं, भीतर ही भीतर जलते हैं वैसे ही बालक भी गूँगा और मूढ़ होकर दुःख पाता है । हे मुनीश्वर! ऐसी बालक अवस्था की इच्छा करने वाला मूर्ख है । यह तो परम दुःख रूप अवस्था है । इसमें विवेक और विचार भी कुछ नहीं होता । बालक खाने को पाता है रुदन करता है । ऐसी अवगुणरूप अवस्था मुझको नहीं सुहाती । जैसे बिजली और जल के बुद्बुदे स्थिर नहीं रहते वैसे ही बालक भी कदाचित् स्थिर नहीं रहता । हे मुनीश्वर! यह महामूर्ख अवस्था है । इसमें कभी कहता है कि हे पिता! मुझको बरफ का टुकड़ा भून दे और कभी कहता है कि मुझको चन्द्रमा उतार दे । ये सब मूर्खता के वचन हैं । इससे ऐसी मूर्खावस्था को मैं अंगीकार नहीं करता । जैसे दुःख का अनुभव बालक को होता है वह हमारे स्वप्न में भी नहीं आया । ऐसी नीच अवस्था को मैं अंगीकार नहीं करता इसमें गुण कोई भी नहीं है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे बाल्यावस्था वर्णनन्नाम चतुर्दशस्सर्गः ॥१४॥

अनुक्रम

युवागारुड़ीवर्णन

श्रीरामजी बोले, हे मुनीश्वर दुःखरूप बाल्यावस्था के अनन्तर युवावस्था आती है सो नीचे से ऊँचे चढ़ती है । वह भी उत्तम नहीं अधिक दुःखदायक है । जब युवावस्था आती है तब कामरूपी पिशाच आ लगता है । वह कामरूपी पिशाच युवावस्थारूपी गढ़े में आ स्थित होता है, चित्त को फिराता है और इच्छा पसारता है । जैसे सूर्य के उदय होने से सूर्य मुखी कमल खिल आता है और पँखुरियों को पसारता है वैसे ही युवावस्थारूपी सूर्य उदय होकर चित्तरूपी कमल और इच्छारूपी पँखुरी को पसारता है । फिर जैसे किसी को अग्नि के कुंड में डाल दिया हो और वह दुःख पावे वैसे ही कामके वश हुआ दुःख पाता है । हे मुनीश्वर! जो कुछ विकार हैं सो सब युवावस्था में प्राप्त होते हैं । जैसे धनवान् को देखके सब निर्धन धन की आशा करते हैं वैसे ही युवावस्था देखकर सब दोष इकट्ठे होते हैं जो भोग को सुखरूप जानकर भोग की इच्छा करता है वह परम दुःख का कारण है । जैसे मद्य का घट भरा हुआ देखने मात्र सुन्दर लगता है परन्तु जब उसको पान करे तब उन्मत्त होकर दीन हो जाता है और निरादर पाता है वैसे ही भोग देखने मात्र सुन्दर भासते हैं , परन्तु जब इनको भोगता है तब तृष्णा से उन्मत्त और पराधीन हो जाता है । हे मुनीश्वर! यह काम, क्रोध, मोह और अहंकार आदि सब चोर युवारूपी रात्रि को देखकर लूटने लगते हैं और आत्मज्ञान रूपी धन को ले जाते हैं । इससे जीव दीन होता है । आत्मानन्द के वियोग से ही जीव दीन हुआ है । हे मुनीश्वर! ऐसी दुख देनेवाली युवावस्था को मैं अंगीकार नहीं करता । शान्ति चित्तको स्थिर करने के लिये है पर युवावस्था में चित्त विषय की ओर धावता है जैसे बाण लक्ष्य की ओर जाता है । तब उसको विषय का संयोगहोता है और विषय की तृष्णा निवृत्त नहीं होती और तृष्णा के मारे जन्म से जन्मान्तर में दुःख पाता है । हे मुनिश्वर! ऐसी दुःखदायक युवावस्था की मुझको इच्छा नहीं है । हे मुनीश्वर! जैसे प्रलयकाल में सब दुःख आकर स्थिर होते हैं वैसे ही काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार , चपलता इत्यादिक सब दोष युवावस्था में आ स्थिर होते हैं जो सब बिजली की चमक से हैं, होके मिट जाते हैं । जैसे समुद्र तरंग होकर मिट जाते हैं वैसे ही यह क्षणभंगुर है और वैसे ही युवावसथा होके मिट जाती है । जैसे स्वप्न में कोई स्त्री विकार से छल जाती है वैसे ही अज्ञान से युवावस्था छल जाती है । हे मुनीश्वर! युवावस्था जीव की परम शत्रु है । जो पुरुष इस शत्रु से बचे हैं वही धन्य हैं । इसके शस्त्र काम और क्रोध हैं जो इनसे छूटा वह वज्र के प्रहार से भी न छेदा जायेगा और जो इनसे बँधा हुआ है वह पशु है । हे मुनीश्वर! युवावस्था देखने में तो सुन्दर है परन्तु भीतर से तृष्णा से जर्जरीभूत है । जैसे वृक्ष देखने में तो सुन्दर हो परन्तु भीतर से घुन लगा हुआ हो वैसे ही युवावस्था है जो भोगों के निमित्त यत्न करती है वे भोग आपात-

रमणीय हैं । कारण यह कि जब तक इन्द्रियों और विषयों का संयोग है तब तक अविचार से भला लगता है और जब वियोग होता है तब दुःख होता है । इसलिए भोग करके मूर्ख प्रसन्न और उन्मत्त होते हैं उनको शान्ति नहीं होती भीतर सदा तृष्णा रहती है और स्त्री में चित्त की आसक्ति रहती है । जब इष्ट वनिता का वियोग होता है तब उसको स्मरण करके जलता है जैसे वन का वृक्ष अग्नि से जलता है वैसे ही युवावस्था में इष्ट के वियोग से जीव जलता है । जैसे उन्मत्त हस्ती जंजीर से बँधता तो स्थिर होता है कहीं जा नहीं सकता वैसे ही कामरूपी हस्ती को जंजीररूपी युवावस्था बन्धन करती है । युवावस्थारूपी नदी है उसमें इच्छारूपी तरंग उठते हैं वे कदाचित् शान्ति नहीं पाते । हे मुनीश्वर! यह युवावस्था बड़ी दुष्ट है । बड़े बुद्धिमान्, निर्मल और प्रसन्न पुरुष की बुद्धि को भी मलिन कर डालती है । जैसे निर्मल जल की बड़ी नदी वर्षाकाल में मलिन हो जाती है वैसे ही युवावस्था में बुद्धि मलिन हो जाती है । हे मुनीश्वर! शरीररूपी वृक्ष है उसमें युवावस्थारूपी बेलि प्रकट होती है सो पुष्ट होती जाती है तब चित्तरूपी भँवरा आ बैठता है और तृष्णारूपी उसकी सुगन्ध से उन्मत्त होता है, सब विचार भूल जाता है । जैसे जब प्रबल पवन चलता है तब सूखे पत्रों को उड़ा ले जाता है वैसे ही युवावस्था वैराग्य; सन्तोषादिक गुणों का अभाव करती है । दुःखरूपी कमल का युवावस्थारूपी सूर्य है, इसके उदय से सब प्रफुल्लित हो जाते हैं । इससे सब दुःखों का मूल युवावस्था है । जैसे सूर्य के उदय से सूर्यमुखी कमल खिल आते हैं वैसे ही चित्तरूपी कमल संसाररूपी पँखुरी और सत्यतारूपीसुगन्ध से खिल आता है और तृष्णारूपी भँवरा उस पर आ बैठता और विषय की सुगन्ध लेता है । हे मुनीश्वर! संसार रूपी रात्रि है उसमें युवावस्थारूपी तारागण प्रकाशते हैं अर्थात् शरीर युवावस्था से सुशोभित होता है । जैसे धान के छोटे वृक्ष हरे तब तक रहते हैं जबतक उसमें फल नहीं आता । जब फल आता है तब वृक्ष सूखने लगते हैं और अन्न परिपक्व होता है वृक्ष की हरियाली नहीं रह सकती वैसे ही जब तक जवानी नहीं आती तब तक शरीर सुन्दर कोमल रहता है जब जवानी आती है तब शरीर क्रूर हो जाता है और फिर परिपक्व होकर क्षीण और वृद्ध होता है । इससे हे मुनीश्वर! ऐसी दुःख की मूलरूप युवावस्था की मुझको इच्छा नहीं । जैसे समुद्र बड़े जल से तरंगो को पसारता और उछालता है तो भी मर्यादा नहीं त्यागता, क्योंकि ईश्वर की आज्ञा मर्यादा में रहने की है और युवावस्था तो ऐसी है कि शास्त्र और लोक की मर्यादा मेट के चलती है और उसका अपना विचार नहीं रहता । जैसे अन्धकार में पदार्थ का ज्ञान नहीं होता वैसे ही युवावस्था में शुभाशुभ का विचार नहीं होता । जिसको विचार नहीं रहा उसको शान्ति कहाँ से हो; वह सदा व्याधि और ताप से जलता रहता है । जैसे जल के बिना मच्छ को शान्ति नहीं होती वैसे ही विचार के बिना पुरुष सदा जलता रहता है । जब युवावस्थारूप रात्रि आती है तब काम पिशाच आके गर्जता है और यही संकल्प उठते हैं कि कोई कामी

पुरुष आवे तो उसके साथ मैं यही चर्चा करूँ कि हे मित्र! वह स्त्री कैसी सुन्दर है और उसके कैसे कटाक्ष हैं।हे मुनीश्वर! इस इच्छा में वह सदा जलता ही रहता है जैसे मरुस्थल की नदी को देख मृग दौड़ता है और जल की अप्राप्ति से जलता है वैसे ही कामी पुरुष विषय की वासना से जलता है और शान्ति नहीं पाता । हे मुनीश्वर! मनुष्य जन्म उत्तम है परन्तु जिनके अभाग्य हैं उनको विषय से आत्मपद की प्राप्ति नहीं होती । जैसे किसी को चिन्तामणि प्राप्त हो और वह उसका निरादर करे उसका गुण न जानकर डाल दे वैसे ही पुरुष ने मनुष्य शरीर पाकर आत्मपद नहीं पाया वह बड़ा अभागी है और मूर्खता से अपने जन्म को व्यर्थ खो डालता है वह युवावस्था में परम दुःख का क्षेत्र अपने निमित्त बोता है और मान, मोह मद इत्यादि विकारों से पुरुषार्थ का नाश करता है । हे मुनीश्वर! युवावस्था ऐसे बड़े विकारों को प्राप्त करती है । जैसे नदी वायु से अनेक तरंग पसारती है वैसे ही युवावस्था चित्त के अनेक कामों को उठाती है । जैसे पक्षी पंख से बहुत उड़ता है और जैसे सिंह भुजा के बल से पशु को मारने दौड़ता है वैसे ही चित्त युवावस्था से विक्षेप की ओर धावता है । हे मुनीश्वर! समुद्र का तरना कठिन है क्योंकि उसमें जल अथाह है उसका विस्तार भी बड़ा है और उसमें कच्छ मच्छ मगर भी बड़े बड़े जीव रहते हैं पर मैं उसका तरना भी सुगम मानता हूँ परन्तु युवावस्था का तरना महाकठिन है अर्थात् युवावस्था में जो चलायमान नहीं होते सो पुरुष धन्य हैं और वन्दना करने योग्य हैं हे मुनीश्वर! यह युवावस्था चित्त को मलीन कर डालती है । जैसे जल की बावली के निकट राख और काँटे हों और पवन चलने से सब आ बावली में गिरें वैसे ही पवनरूपी युवावस्था दोषरूपी धूल और काँटों को चित्तरूपी बावली में डाल के मलीन कर देती है । ऐसे अवगुणों से पूर्ण युवावस्था की इच्छा मुझको नहीं है । युवावस्था मुझ पर यही कृपा कर कि तेरा दर्शन न हो । तेरा आना मैं दुःख का कारण मानता हूँ । जैसे पुत्र के मरण का संकट पिता नहीं सह सकता और सुख का निमित्त नहीं देखता वैसे ही तेरा आना मैं सुख का निमित्त नहीं देखता इससे मुझपर दया कर कि अपना दर्शन न दे।हे मुनीश्वर! युवावस्था का तरना महा कठिन है । यौवनवान् नम्रतासंयुक्त नहीं होते और शास्त्र के गुण वैराग्य विचार संतोष और शान्ति इनसे भी सम्पन्न नहीं हैं । जैसे आकाश में वन होना आश्चर्य है वैसे ही युवावस्था में वैराग्य,विचार, शान्ति और संतोष होना भी बड़ी आश्चर्य है । इससे आप मुझसे वही उपाय कहिये जिससे युवावस्था के दुःख से मुक्ति होकर आत्मपद की प्राप्ति हो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे युवागारुड़ीवर्णनन्नाम पञ्चदशस्सर्गः ॥१५॥

अनुक्रम

दुराशावर्णन

श्रीरामजी बोले, हे मुनीश्वर ! जिस कामविलास के निमित्त पुरुष स्त्री की वाञ्छा करता है वह स्त्री अस्थि, माँस, रुधिर, मूत्र और विष्ठा से पूर्ण है और इन्हीं की पुतली बनी हुई है । जैसे यन्त्री की बनी पुतली तागे के द्वारा अनेक चेष्टा करती है वैसे ही यह अस्थि, माँसादिक की पुतली में कुछ और नहीं है । जो विचार से नहीं देखता उसको रमणीय दीखती है । जैसे पर्वत के शिखर दूर से सुन्दर और गंग माला सहित भासते हैं और निकट से असार हैं-पत्थर ही पत्थर दिखते है वैसे ही स्त्री वस्त्र और भूषणों से सुन्दर भासती है । जो अंग को भिन्न भिन्न विचारकर देखो तो सार कुछ नहीं । जैसे नागिनि के अंग बहुत कोमल होते हैं परन्तु उसका स्पर्श करे तो काट के मार डालती है वैसे ही जो कोई स्त्री को स्पर्श करे तो काट के मार डालती है वैसे ही जो कोई स्त्री को स्पर्श करते हैं उनको वह नाश कर डालती है । जैसे विष की बेलि देखने मात्र सुन्दर लगती है परन्तु स्पर्श करने से मार डालती है और जैसे हाथी को जंजीर से बाँधे तो जिस द्वार पै रहता है वहीं स्थिर रहता है वैसे ही अज्ञानी का चित्तरूपी हाथी काम रूपी जंजीर से बँधा हुआ स्त्रीरूपी एक स्थान में स्थिर रहता है वहाँ से कहीं जा नहीं सकता । जब हाथी को महावत अंकुश का प्रहार करता है तब वह बन्धन को तोड़ के निकल जाता है वैसे ही इस चित्तरूपी मूर्ख हाथी को जब महावतरूपी गुरु उपदेशरूपी अंकुश का बारंबार प्रहार करता है तब निर्बन्ध होता है । हे मुनीश्वर! कामी पुरुष स्त्री की वाच्छा अपने नाशके निमित्त करता है । जैसे कदली वन का हाथी कागद की हथिनी देखकर और छल पाके बन्धन में आता है और उससे परम दुःख पाता है वैसे ही सब दुःखों का मूल स्त्री का संग है । हे मुनीश्वर ! जैसे बन के दाह की अग्नि बन को जलाती है वैसे ही स्त्री रूपी अग्नि उससे भी अधिक है, क्योंकि वह अग्नि तो स्पर्श करने से ही जलाती है परन्तु स्त्रीरूपी अग्नि स्मरणमात्र से जलाती है । जो सुख स्मरणीय दीखता है वह आपात-रमणीय हैं, जब स्त्रीसुख का वियोग होता है तब मुरदे की नाई हो जाता है । हे मुनीश्वर ! यह तो अस्थि, माँस और रुधिर का पिंजरा है सो अग्नि में भस्म हो जायगा अथवा पशु पक्षी के खाने का आहार होगा और प्राण आकाश में लीन हो जावेंगे । इससे इस स्त्री की इच्छा करनी मूर्खता है । जैसे अग्नि की ज्वाला के ऊपर श्यामता होती है वैसे स्त्री के शीश के ऊपर श्याम केश हैं और जैसे अग्नि के स्पर्श करने से जलता है वैसे ही स्त्री के स्पर्श करने से पुरुष जलता है, इससे जलना दोनों में तुल्य है । हे मुनीश्वर ! युवावस्था को नष्ट करने वाली स्त्री रूपी अग्नि है । जो स्त्री की इच्छा करते हैं वह महामूर्ख और अज्ञानी हैं । वह स्त्री इच्छा अपने नाश के निमित्त करते हैं । जैसे पतंग अपने नाश के निमित्त दीपक की इच्छा करता है वैसे ही कामी पुरुष अपने नाश के

निमित्त स्त्री की इच्छा करता है । हे मुनीश्वर ! स्त्रीरूपी विष की बेलि है हाथ पाँव के अग्रभाग उसके पत्र हैं , भुजा डाली हैं, स्तनरूप गुच्छे हैं और नेत्र आदिक इन्द्रियाँ फूल हैं उस पर कामी पुरुषरूपी भँवरे आ बैठते हैं । कामरूपी धीवर ने स्त्रीरूप जाल पसारा है उस पर कामी पुरुषरूपी पक्षी आ फँसते हैं । कामरूपी धीवर उनको फँसाकर परम नष्ट कर देता है । ऐसे दुःख की देने वाली स्त्री को जो वाच्छा करते हैं महामूर्ख हैं । हे मुनीश्वर ! स्त्री रूपी सर्पिनी है जब उसका फुत्कार निकलता है तब उसका वैराग्यरूपी कमलजल जाते हैं और जब सर्पिणी डसती है तब विष चढ़ता है । स्त्रीरूपीसर्पिणी का चिन्तन करते ही भीतर से आप ही विष चढ़ जाता है । हे मुनीश्वर ! जैसे व्याध छलकर मछली को फाँसता है वैसे ही कामी पुरुष छली के सदृशसुन्दर स्त्रीरूपी जाल देखके फँसता है और स्नेह रूपी तागे से बन्धन पाकर खिंचा चला जाता है, तब तृष्णारूपी छुरी से काम उसे मार डालता है । हे मुनीश्वर ! ऐसे दुःख के देने वाली स्त्री की मुझको इच्छा नहीं । कामरूपी व्याध ने रागरूपी इन्द्रियों से जाल बिछा कामी पुरुषरूपी मृगों को आसक्त कर डाला है । स्त्री की स्नेहरूपी डोरी है । उससे कामी पुरुषरूपी बैल बँधा है और स्त्री के मुखरूपी चन्द्रमा को देखकर कामी पुरुषरूपी कमलिनी खिल आती हैं । जैसे चन्द्रमुखी कमल चन्द्रमा को देखकर प्रसन्न होते हैं और सूर्यमुखी नहीं होते वैसे ही कामी पुरुष भोग से प्रसन्न होते हैं और ज्ञानवान प्रसन्न नहीं होते । जैसे नेवला सर्प को बिल से निकाल के मारता है वैसे ही कामी पुरुष को स्त्री आत्मानन्द में से निकाल के मार डालती है । पुरुष जब स्त्री के निकट जाता है तब वह उसको भस्म कर डालती है । जैसे सूखे तृण और घृत को अग्नि भस्म कर डालती है वैसे ही कामी पुरुष को स्त्रीरूपी नागिनि भस्म कर डालती है । हे मुनीश्वर! स्त्रीरूपी रात्रि का स्नेहरूपी अन्धकार है और काम, क्रोधादिक उसमे उलूक और पिशाच हैं । हे मुनीश्वर! जो स्त्री रूपी खड्ग के प्रहार से युवारूपी संग्राम से बचा है वह पुरुष धन्य है; उसको मेरा नमस्कार है । स्त्री का संयोग परम दुःख का कारण है, इससे मुझको इसकी इच्छा नहीं । हे मुनीश्वर! जो रोग होता है उसी के अनुसार जो औषध करता है तो रोग निवृत्त होता है और कुपथ्य से उसका प्रकोप होकर रोग बढ़ जाता है, इससे मेरे रोग के अनुसार औषध करो । मेरा रोग सुनिये कि जरा और मृत्यु मुझको बड़ा रोग है । उसके नाश की औषधि मुझको दीजिए । स्त्री आदिक सब भोग तो रोग के वृद्धिकर्ता हैं । जैसे अग्नि में घृत डालिये तो बढ़ जाती है वैसे ही भोग से जरा मृत्यु आदि रोग बढ़ते हैं इससे इस रोग की निवृत्ति की औषधि करो, नहीं तो सबका त्याग कर मैं बन जा रहूँगा । हे मुनीश्वर! जिसके स्त्री है उनको भोग की इच्छा भी होती है और जिसके स्त्री नहीं होती उसको स्त्री की भी नहीं । जिसने स्त्री का त्याग किया है उसने संसार का भी त्याग किया है और वही सुखी है । संसार का बीज स्त्री है इससे मुझको स्त्री की इच्छा नहीं । मुझको वही औषधि दीजिए

जिससे जरा मृत्यु आदि रोग की निवृत्त हो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे दुराशावर्णनन्नाम षोडशस्सर्गः ॥१६॥

अनुक्रम

जरावस्थानिरूपणं

श्रीरामजी बोले, हे मुनीश्वर ! बालक अवस्था तो महाजड़ और अशक्त है । जब युवावस्था आती है तब बाल्यावस्था का ग्रास कर लेती है और उसके अनन्तर जब वृद्धावस्था आती है तब शरीर जर्जरीभूत हो जाता है और बुद्धि क्षीण हो जाती है, फिर मृत्यु पाता है । हे मुनीश्वर ! इस प्रकार अज्ञानी का जीना व्यर्थ है कुछ अर्थ की सिद्धि नहीं । जैसे नदी के तट पर के वृक्ष जल के प्रवाह से जर्जरीभूत हो जाते हैं वैसे ही वृद्धावस्था में शरीर जर्जरीभूत हो जाता हैं । जैसे पवन से पत्र उड़ जाते है वैसे ही वृद्धावस्था में शरीर नाश पाता है । जितने कुछ रोग है वह सब वृद्धावस्था में आ प्राप्त होते हैं और शरीर कृश हो जाता है । उस समय स्त्री, पुत्रादिक भी सब वृद्ध का त्याग कर देते हैं । जैसे पक्के फल को वृक्ष त्याग देता है और जैसे वावले को देख के सब हँसके बोलते हैं कि इसकी बुद्धि जाती रही वैसे ही इसको भी देखके हँसते हैं । जैसे कमल का फूल बरफ पड़ने से जर्जरीभूत हो जाता है वैसे ही जरावस्था में पुरुष जर्जरीभाव को प्राप्त होता है, शरीर कुबड़ा हो जाता है, केश श्वेत हो जाते हैं और शक्ति क्षीण हो जाती है । जैसे चिर काल के बड़े वृक्ष में घुन लगता है वैसे ही इसमें कुछ शक्ति नहीं रहती । हे मुनीश्वर ! और भी सब कृत्य क्षीण हो जाती है परन्तु एक आसक्तिमात्र रहती है । जैसे बड़े वृक्ष पर उलूक आ रहते हैं वैसे ही इसमें क्रोध शक्ति आ रहती है और सब शक्तियाँ क्षीण हो जाती हैं । हे मुनीश्वर ! जरावस्था दुःख का घर है जब जरावस्था आती है तब सब दुःख इकट्ठे होते हैं उनसे पुरुष महादीन हो जाते हैं । युवावस्था में जो काम का बल रहता है सो भी जरा में क्षीण हो जाता है, इन्द्रियों की आसक्ति घट जाती है और उनकी चपलता का अभाव हो जाता है । जैसे पिता के निर्धन होने से पुत्र दीन हो जाता है वैसे ही शरीर के निर्बल होने से इन्द्रियाँ भी निर्बल हो जाती हैं केवल एक तृष्णा बढ़ जाती है । हे मुनीश्वर ! जब जरारूपी रात्रि आती है तब खाँसीरूपी स्यार आकर शब्द करते हैं और आधिव्याधिरूपी उलूक आकर निवास करते हैं । हे मुनीश्वर ! ऐसी नीच वृद्धावस्था की मुझको इच्छा नहीं जैसे फल से वृक्ष झुक जाता है वैसे ही बुढ़ापे से देह कुबड़ी हो जाती है ।युवावस्था में स्त्री पुत्रादिक उसकी टहल करते थे पर वही सब उसको वृद्धावस्था में जैसे वृद्ध बैल को बैलवाला त्याग देता है वैसे ही त्याग देते हैं, देखके

हँसते हैं और अपमान करते हैं । उनको वह तब ऊँट की नाई भासता है । हे मुनीश्वर ! ऐसी नीच अवस्था की मुझको इच्छा नहीं । अब जो कुछ कर्तव्य हो मुझसे कहिए मैं करूँ ? इस शरीरकी तीनों अबस्था में कोई सुखदायी नहीं, क्योंकि बाल्यावस्था महामूढ़ है, युवावस्था महाविकारवान् है और जरावस्था महादुःख का पात्र है । बाल्यावस्था को युवावस्था ग्रास कर लेती है; युवावस्था को जरावस्था ग्रास कर लेती है और जरावस्था को मृत्यु ग्रास कर लेती है । यह अवस्था सब अल्पकाल की हैं, इनके आश्रय से मुझको क्या सुख होगा ? इससे आप मुझे वही उपाय बताइये जिससे इस दुःख से मुक्त हो जाऊँ । हे मुनीश्वर !जब जरावस्था आती है तब मरना भी निकट आता है । जैसे सन्ध्या आनेसे रात्रि तत्काल आ जाती है और जो सन्ध्या के आनेसे दिन की इच्छा करते हैं वह मूर्ख हैं वैसे ही जरा के आने से जीने की आशा रखनी महामूर्खता है । हे मुनीश्वर ! जैसे बिल्ली चिन्तन करती है कि चूहा आवे तो पकड़ लूँ वैसे ही मृत्यु भी देखती है कि जरावस्था आवे तो मैं इसका ग्रास करलूँ । हे मुनीश्वर ! यह परम नीच अवस्था है । यह जब आती है तब शरीर को जर्जरीभूत कर देती है; कँपाने लगती है और शरीर को निर्बल और क्रूर कर देती है । जैसे कमल पर बरफ की वर्षा हो और वह जर्जरीभूत हो जाय वैसे ही यह शरीर को जर्जरीभूत कर डालती है । जैसे वन में बाघ आकर शब्द करते हैं और मृग का नाश करते हैं वैसे ही खाँसी रूपी बाघ आकर मृगरूपी बल का नाश करते हैं । हे मुनीश्वर ! जब जरा आती है तब जैसे चन्द्रमा के उदय से कमलिनी खिल आती है वैसे ही मृत्यु प्रसन्न होती है । यह जरावस्था बड़ी दुष्टा है ; इसने बड़े-बड़े योधों को भी दीन कर दिया है । यद्यपि बड़े-बड़े शूर संग्राम में शत्रुओं को जीतते हैं पर उनको भी जरा ने जीत लिया है । जो बड़े-बड़े पर्वतो को चूर्ण कर डालते है उनको भी जरा पिशाचिनी ने महादीन कर दिया है । इस जरारूपी राक्षसी ने सबको दीन कर दिया है। यह सबको जीतने वाली है । हे मुनीश्वर ! जैसे वृक्ष में अग्नि लगती और उसमें से धूम निकलता है । वैसे ही शरीररूपी वृक्ष में से जरारूपी अग्नि लगकर तृष्णारूपी धुँवा निकलता है । जैसे डिब्बे में बड़े रत्न रहते हैं वैसे ही जरारूपी डिब्बे में दुःखरूपी अनेक रत्न रहते हैं । जरारूपी वसन्त ऋतु है; उससे शरीररूपी वृक्ष दुःखरूपी रस से होता है । जैसे हाथी जंजीर से बँधा हुआ दीन हो जाता है वैसे ही जरारूपी जंजीर से बँधा पुरुष दीन हो जाता हैं । उसके सब अंग शिथिल हो जाते हैं बल क्षीण हो जाता है, इन्द्रियाँ भी निर्बल हो जाती हैं और शरीर जर्जरी भाव को प्राप्त होता है , परन्तु तृष्णा नहीं घटती वह तो नित्य बढ़ती ही चली जाती है ।जैसे रात्रि आती है तब सूर्यवंशी कमल सब मुँद जाते हैं और पिशाचिनी आ विचरने लगती है और प्रसन्न होती है वैसे ही जरारूपी रात्रि के आने से सब शक्तिरूप कमल मुँद जाते हैं तृष्णारूपी पिशाचिनी प्रसन्न होती है ।हे मुनीश्वर ! जैसे गंगातट के वृक्ष गंगाजल के वेग से जर्जरीभूत हो जाते हैं वैसे ही जो यह आयुरूपी प्रवाह चलता है

उसके वेग से शरीर जर्जरीभूत हो जाता है जैसे माँस के टुकड़े को देख आकाश से उड़ती चील नीचे आकर ले जाती है वैसे ही जरावस्था में शरीररूपी माँस को काल ले जाता है हे मुनीश्वर ! यह तो काल का ग्रास बना हुआ है । जैसे वृक्ष को हाथी खा जाता है वैसे जरावाले शरीर को काल देख के खाता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे जरावस्थानिरूपणं नाम सप्तदशस्सर्गः ॥१७॥

अनुक्रम

कालनिरूपण

श्रीरामजी बोले कि हे मुनीश्वर ! संसाररूपी गढ़ा है उसमें अज्ञानी गिरा है, पर संसाररूपी गढ़ा तो अल्प है और अज्ञानी बड़ा हो गया है । संकल्प विकल्प की अधिकता से बढ़ा है । जो ज्ञानवान् पुरुष है वह संसार को मिथ्या जानता है और संसाररूपी जाल में नहीं फँसता और जो अज्ञानी पुरुष है वह संसार को सत्य जानकर उसकी आस्थारूपी जाल में फँसता है और भोग की वाञ्छा करता है । वह ऐसा है जैसे दर्पण में प्रतिबिम्ब देखकर बालक पकड़ने की इच्छा करता है वैसे ही अज्ञानी संसार को सत्य जानकर जगत् के पदार्थ की वाञ्छा करता है कि यह मुझे प्राप्त हो और यह न हो ।यह सब सुख नाशात्मक हैं अभिप्राय यह कि आते है और जाते हैं स्थिर नहीं रहते; इनको काल ग्रास करता है । जैसे पक्के अनार को चूहा खा जाता है वैसे ही सब पदार्थों को काल खाता है । हे मुनीश्वर ! यह सब पदार्थ कालग्रसित है । जैसे नेवला सर्प को भक्षण कर जाता है वैसे ही बड़े बड़े बली सुमेरु ऐसे गम्भीर पुरुषों को काल ने ग्रसित किया है । जगतरूपी एक गूलर का फल है; उसमें मज्जा ब्रहमादिक हैं और उसका वन ब्रहमरूप है । उस ब्रहमरूप वन में जितने वन हैं सो सब इसका आहार हैं । यह काल सबको भक्षण कर जाता है । हे मुनीश्वर ! यह काल बड़ा बलिष्ठ है; जो कुछदेखने में आता है सो सब इसने ग्रास कर लिया है । हमारे जो बड़े ब्रहमादिक हैं उनका भी काल ग्रास कर जाता है तो और का क्या कहना है जैसे सिंह मृग का ग्रास कर लेता है । काल किसी से जाना नहीं जाता । क्षण, घरी, प्रहर, दिन मास और वर्षादिक से जानिये सोई काल है और काल की मूर्ति प्रकट नहीं है । यह किसी को स्थिर नहीं देता ।एक बेलि, काल ने पसारी है उसकी त्वचा रात्रि है और फूल दिन है और जीवरूपी भौंरे उस पर आ बैठते हैं । हे मुनीश्वर ! जगत्रूपी गूलर का फल है उसमें जीवरूपी बहुत मच्छर रहते हैं । जैसे तोता अनार का भक्षण करता है वैसे ही काल उस फल का भक्षण करता है । जगत्रूपी वृक्ष है; जीवरूपी उसके पत्र हैं और कालरूपी हस्ती उसका भक्षण कर जाता है । शुभ अशुभ रूपी भैंसे को कालरूपी सिंह छेद छेद के खाता है । हे मुनीश्वर ! यह काल महाक्रूर है; किसी पर दया नहीं करता; सबको खा जाता है । जैसे मृग सब कमलों को खा जाता उससे कोई नहीं बचता वैसे ही काल भी सबको खाता है परन्तु एक कमल बचा है उस कमल के शान्ति और मैत्री अंकुर हैं और चेतनामात्र प्रकाश है, इस कारण वह बचा है । कालरूपी मृग इस तक नहीं पहुँच सकता बल्कि इसमें प्राप्त हुआ काल भी लीन हो जाता है । जो कुछ प्रपंच हैं सो सब काल के मुख में हैं । ब्रहमा, विष्णु, रुद्र, कुबेर आदि सब मूर्ति काल की धरी हुई हैं । यह उनको भी अन्तर्द्धान कर देता है । हे मुनीश्वर उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय सब काल से होते हैं । अनेक बेर इसने महाकल्प का भी ग्रास किया है

और अनेक बेर करेगा । काल को भोजन करने से तृप्ति कदाचित् नहीं होती और कदाचित् होनेवाली भी नहीं । जैसे अग्नि घृत की आहुति से तृप्त नहीं होता । वैसे ही जगत् और सब ब्रह्मांड का भोजन करके भी काल तृप्त नहीं होता । इसका ऐसा स्वभाव है कि इन्द्र को दरिद्री कर देता है और दरिद्री को इन्द्र कर देता है, सुमेरु को राई बनाता है और राई को सुमेरु करता है । सबसे बड़े ऐश्वर्यवान् को नीच कर डालता है और सबसे नीच को ऊँच कर डालता है । बूँद को समुद्र कर डालता है और समुद्र को बूँद करता है । ऐसी शक्ति काल में है । यह जीवरूपी मच्छरों को शुभाशुभ कर्मरूपी छुरे से छेदता रहता है । कालरूप का चक्र जीवरूपी हँड़िया की शुभ अशुभ कर्मरूपी रस्सी से बाँधकर फिराता है और जीवरूपी वृक्ष को रात्रि और दिनरूपी कुल्हाड़े से छेदता है । हे मुनीश्वर ! जितना कुछ जगत् विलास भासता है काल सबको ग्रास कर लेगा । जीवरूप रत्न का काल डब्बा है सो सबको अपने उदर में डालता जाता है । काल यों खेल करता है कि चन्द्र सूर्यरूपी गेंद को कभी ऊर्ध्व को उछालता है और कभी नीचे डालता है । जो महापुरुष है वह उत्पत्ति और प्रलय के पदार्थों में से किसी के साथ स्नेह नहीं करता और उसका काल भी नाश नहीं कर सकता ! जैसे मुण्ड की माल महादेवजी गले में धारे हैं वैसे ही यह भी जीवों की माला गले में डालता है । हे मुनीश्वर ! जो बड़े बलिष्ठ हैं उनको भी काल ग्रहण कर लेता है । जैसे समुद्र बड़ा है उसको बड़वानल पान कर लेता है और जैसे पवन भोजपत्र को उड़ाता है वैसे ही काल का भी बल है, किसी की सामर्थ्य नहीं जो इसके आगे स्थित रहे । हे मुनीश्वर ! शान्तिगुण प्रधान देवता; रजोगुण प्रधान बड़े राजा और तमोगुण प्रधान दैत्य और राक्षस हैं उनमें किसी को सामर्थ्य नहीं जो इसके आगे स्थिर रहे । जैसे तौली में अन्न और जल भरके अग्नि पर चढ़ा देने से अन्न उछलता है और वह अन्न के दाने करछी से कभी ऊपर और कभी नीचे फिर जाते हैं वैसे ही जीवरूपी अन्नके दाने जगत्रूपी तौली में पड़े हुए रागद्वेषरूपी अग्नि पर चढ़े हैं । और कर्मरूपी करछी से कभी ऊपर जाते हैं और कभी नीचे आते हैं । हे मुनीश्वर ! यह काल किसी को स्थिर नहीं होने देता यह महा कठोर है, दया किसी पर नहीं करता । इसका भय मुझको रहता है इससे वही उपाय मुझसे कहिये जिससे मैं काल से निर्भय हो जाऊँ ।

॥ इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालनिरूपणन्नामाष्टादशस्सर्गः ॥१८॥

अनुक्रम

कालविलासवर्णन

श्रीरामजी बोले कि हे मुनीश्वर ! यह काल बड़ा बलिष्ठ है । जैसे राजा के पुत्र शिकार खेलने जाते हैं तो वन में बड़े बड़े पशु-पक्षी उनसे दुःख पाते हैं वैसे ही यह संसाररूपी वन है उसमें प्राणिमात्र पशु-पक्षी हैं । जब कालरूपी राजपुत्र उसमें शिकार खेलने आता है तब सब जीव भय पाते हैंऔर जर्जरीभूत होते हैं और वह उनको मारता है । हे मुनीश्वर ! यह काल महाभैरव है सबका ग्रास कर लेता है प्रलय में सबका प्रलय कर डालता है और इसकी जो चण्डिका शक्ति है उसका बड़ा उदर है । वह कालिका सबका ग्रास करके पीछे नृत्य करती है । जैसे वन के मृग को सिंह और सिंहनी भोजन करके नृत्य करते हैं वैसे ही जगत् रूपी वन में जीवरूपी मृग को भोजन करके काल और कालिका नृत्य करते हैं फिर इन्हीं से जगत् का प्रादुर्भाव होता है । नाना प्रकार के पदार्थों को रचते हैं और पृथ्वी; बगीचे , बावली आदि सब पदार्थ इन्हीं से उत्पन्न होते हैं । जीवों की उत्पत्ति भी इनसे होती है और एक समय में उनका नाश भी कर देती है । सुन्दर समुद्र रचके फिर उनमें अग्नि लगा देती है और सुन्दर कमल को बनाके फिर उसके ऊपर बरफ की बर्षा करती है । जहाँ बड़े बड़े स्थान बसते हैं उनको उजाड़ डालती है और फिर उजाड़ में बस्ती करती है और नाश भी करती है; किसी को स्थिर नहीं रहने देती । जैसे बाग में वानर आकर वृक्ष को ठहरने नहीं देता वैसे ही कालरूपी वानर किसी पदार्थ को स्थिर रहने नहीं देता । हे मुनीश्वर ! इस प्रकार से सब पदार्थ काल से जर्जरीभूत होते हैं । उनका आश्रय मैं किस रीति से करूँ ? मुझको तो यह सब नाशरूप भासते हैं इससे अब मुझको किसी जगत् के पदार्थ की इच्छा नहीं ।

॥इति श्रीयोगवाशिष्ठे कालविलासवर्णनन्नामैकोनविंशतितमस्सर्ग : ॥१९॥

अनुक्रम

कालजुगुप्सावर्ण

श्रीरामजी बोले कि हे मुनीश्वर ! इस काल का महापराक्रम है । इसके तेज के सम्मुख कोई नहीं रह सकता । यह क्षण में ऊँच को नीच और नीच को ऊँच कर डालता है । उसका निवारण कोई नहीं कर सकता । सब उसी के भय से काँपते हैं यह महाभैरव है सब विश्व का ग्रास कर लेता है । इसकी चण्डिकारूप शक्ति है, वह अति बलवान् है और नदीरूप है, उसका उल्लंघन कोई नहीं कर सकता । महाकालरूप काली है, उसका बड़ा भयानक आकार है । कालरूप जो रुद्र है उससे अभिन्नरूपी कालिका है वह सबका पान करके पीछे भैरव और भैरवी नृत्य करते हैं । उस काल और कालिका का बड़ा आकार है । उसका आकाश शीश, पाताल में चरण हैं और दशों दिशा भुजा है । सप्त समुद्र उसके हाथ में कंकण हैं; सम्पूर्ण पृथ्वीरूप उसके हाथ में पात्र है; और उस पर जो जीव हैं वह भोजन के योग्य हैं । हिमालय और सुमेर पर्वत दोनों कानों में कुण्डल हैं; चन्द्रमा और सूर्य उसके दोनों लोचन हैं और सब तारागण उसके मस्तक में बिन्दु हैं । काल के हाथ में त्रिशूल और मूसल आदि शस्त्र हैं और कालिका के हाथ में ताँतरूपी फाँसी हैं, उससे जीवों को मारती है । ऐसी कालिका देवी सब जीवों का ग्रास करके महाभैरव के आगे नृत्य करती है, अट्टाट्ट शब्द करती है और जीवों को भोजन करके उनकी मुण्ड माला गले में धारण करती है । भैरव के सम्मुख रहने की किसी में शक्ति नहीं, जहाँ उजाड़ है वहाँ क्षण में बस्ती कर डालता है और जहाँ बस्ती है वहाँ क्षण में उजाड़ करता है । इसी से उसका नाम देव कहते हैं । वह बड़े बड़े पदार्थों को उत्पन्न और नष्ट करता है, स्थिर किसी को नहीं रहने देता, इससे इसका नाम कृतान्त है और नित्यरूप भी यही है, क्योंकि इसका परिणाम अनित्य है इसी से इसका नाम कर्म है । जब अभावरूपी धनुष हाथ में धरता है तो उससे रागद्वेषरूपी बाण चलाता है और उस बाण से जर्जरीभूत करके नाश करता है । जैसे बालक मृत्तिका की सेना बनाता है और उठाकर नष्ट भी कर देता है वैसे ही काल को उपजाने और नष्ट करने में कुछ यत्न नहीं करना पड़ता । हे मुनीश्वर ! कालरूपी धीवर है और उसने क्रियारूपी जाल पसारा है । उसमें जीवरूपी पक्षी फँसते हैं सो फँसे हुए शान्ति नहीं पाते । हे मुनीश्वर ! यह तो सब नाशरूप पदार्थ हैं इनमें आश्रय किसका करूँ कि जिसमें सुख हो । यह तो स्थावर जंगमजगत सब काल के मुख में है यह सब नाश-रूप मुझको दृष्टि आता है, इससे जो निर्भय पदहो सो मुझको कहिए ।

॥ इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालजुगुप्सावर्णन्नाम विंशतितमस्सर्गः ॥२०॥

अनुक्रम

कालविलासवर्णन

श्रीरामजी बोले कि हे मुनीश्वर ! जितने पदार्थ भासते हैं वह सब नाशरूप हैं तो मैं किसकी इच्छा करूँ और किसका आश्रय करूँ । इनकी इच्छा करनी मूर्खता है । जितनी चेष्टा अज्ञानी करता है वह सब दुःख के निमित्त है और जीने में अर्थ की सिद्धि कुछ नहीं है, क्योंकि बालक अवस्था में मूढ़ता रहती है, कुछ विचार नहीं रहता । जब युवावस्था आती है तब मूर्खता से विषय को सेवता है और मान मोहादि विकारों से मोहा जाता है, उसमें कुछ विचार नहीं होता और स्थिर भी नहीं रहता, दीन का दीन रहकर विषय की तृष्णा करता है, शान्ति नहीं पाता । हे मुनीश्वर ! आयुष्य महाचञ्चल है और मृत्यु तो निकट है उसमें अन्यथा भाव नहीं होता । हे मुनीश्वर ! जितने भोग हैं वे रोग हैं, जिसको सम्पदा जानते हैं वह आपदा है, जिसको सत्य कहते हैं वह असत्यरूप है, जिन स्त्री, पुत्रादिकों को मित्र जानते हैं वह सब बन्धन के कर्त्ता हैं और इन्द्रियाँ महाशत्रुरूप हैं । वह सब मृगतृष्णा के जलवत् हैं, यह देह विकारूप है, मन महाचञ्चल और सदा अशान्तरूप है और अहंकार महानीच है, इसने ही दीनता को प्राप्त किया है । इससे जितने पदार्थ इसको सुखदायकभासते हैं वह सब दुःख के देने वाले हैं इससे कदाचित शान्ति नहीं होती । इसी कारण मुझको इनकी इच्छा नहीं । यद्यपि यह देखनेमात्र सुन्दर भासते हैं पर इनमें सुख कुछ नहीं और स्थिर न रहेंगे । जैसे समुद्र में नाना प्रकार के तरंग भासते हैं, पर वह सब बड़वाग्नि से नाश होते हैं वैसे ही यह पदार्थ भी नष्ट हो जाते हैं । मैं अपनी आयु में कैसे आस्था करूँ ? हे मुनीश्वर ! बड़े समुद्र, सुमेरु, राक्षस. दैत्य, देवता, सिद्ध, गन्धर्व, पृथ्वी, अग्नि, पवन, यम, कुबेर , वरुण, इन्द्र, ध्रुव, चन्द्रमा और बड़े ईश्वर जगत् के कर्त्ता, ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र और काल जो सबको भक्षण करता है, काल की स्त्री, सब का आधार आकाश और जितना जगत् है यह सब नष्ट हो जावेंगे तो हमारी कौन गिनती है । हम किसकी आस्था करें और किसका आश्रय करें ? यह सब जगत् भ्रममात्र है; अज्ञानी की इसमें आस्था होती है और हमारी नहीं, क्योंकि जगत् भ्रम से उत्पन्न हुआ है । मैं इतना जानता हूँ कि संसार में जीव को इतना दुःखी अहंकार ने किया है । हे मुनीश्वर ! यह जीव अपने परमशत्रु अहंकारसे भटकता फिरता है । जैसे रस्सी से बँधे हुए पतंग कभी उर्ध्व और कभी नीचे जाते हैं, स्थिर कभी नहीं रहते वैसे ही जिस अहंकार से कभी ऊर्ध्व और कभी अधो जाता है स्थिर कभी नहीं होता । जैसे अश्व जुते हुए रथ के ऊपर बैठकर सूर्य आकाश मार्ग में फिरता है वैसे ही जीव भ्रमता है, स्थिर कदाचित नहीं होता। हे मुनीश्वर ! यह जीव परमार्थ सत्य स्वरूप से भूला हुआ भटकता है; अज्ञान से संसार में आस्था करता है और भोग को

सुखरूप जानकर उसमें तृष्णा करता है ।पर जिसको सुखरूप जानता है वह रोगसमान है और विष से पूर्ण सर्प जीव का नाश करने वाला है जिसको सत्य जानता है वह सब असत्य है सब काल के मुख में ग्रसे हुए हैं । हे मुनीश्वर ! विचार के बिना जीव अपना नाश आप ही करता है, क्योंकि इसका कल्याण करनेवाला बोध है । जब सत्य विचार बोध के शरण जाय तो कल्याण हो । जितने पदार्थ हैं वह स्थिर नहीं रहते । इनको सत्य जानना दुःख के निमित्त है । हे मुनीश्वर !जब तृष्णा आती है तब आनन्द और धैर्य का नष्ट कर देती है । जैसे वायु मेघ का नाश कर डालता है वैसे ही तृष्णा ज्ञान का नाश कर डालती है । इससे मुझे वही उपाय कहिय जिससे जगत् का भ्रम मिटजावे और अविनाशी पद की प्राप्ति हो । इस भ्रमरूप जगत् की आस्था मैं नहीं देखता । इससे जैसी इच्छा हो वैसा करें , परन्तु जो सुख इसको होने हैं वह अवश्य होंगे कभी न मिटेंगे । चाहे पहाड़ की कन्दरा में बैठें, चाहे कोट में परन्तु जो होने को है वह अवश्य होगा । इस निमित्त यत्न करना मूर्खता है ।

॥ इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे कालविलासवर्णनन्नामैकविंशतितमस्सर्गः ॥२१॥

अनुक्रम

सर्वपदार्थाभाववर्णन

श्रीरामजी बोले कि हे मुनीश्वर ! यह जो नाना प्रकार के सुन्दर पदार्थ भासते हैं वह सब नाशरूप हैं, इनकी आस्था मूर्ख करते हैं । यह तो मन की कल्पना से रचे हुए हैं, उनमें से मैं किसकी आस्था करूँ ? हे मुनीश्वर अज्ञानी जीव का जीना व्यर्थ है, क्योंकि जीने से उनका कुछ अर्थ सिद्ध नहीं होता । जब कुमार अवस्था होती है तब बुद्धि मूढ़ होती है, उसमें कुछ विचार नहीं होता । जब युवावस्था आती है तब काम क्रोधादिक विकार उत्पन्न होते हैं ये सदा ढ़ापे रहते हैं । जैसे जाल में पक्षी बँध जाता है और आकाशमार्ग को देख भी नहीं सकता वैसे ही काम क्रोधादिक से ढँका हुआ जीव विचार मार्ग को नहीं देख सकता । जब वृद्धावस्था आती है तब शरीर जर्जरीभूत और महादीन हो जाता है और शरीर को त्याग देता है । जैसे कमल के ऊपर बरफ पड़ती है तब उसको भँवर त्याग देता है वैसे ही शरीररूपी कमल को जरा का स्पर्श होता है तब जीवरूपी भँवरा त्याग देता है । हे मुनीश्वर ! यह शरीर तब तक सुन्दर है जब तक वृद्धावस्था नहीं प्राप्त होती । जैसे चन्द्रमा का प्रकाश जब तक राहु दैत्य ने आवरण नहीं किया तब तक रहता है; जब राहु दैत्य आवरण करता है तब तक प्रकाश नहीं रहता वैसे ही जरावस्था के आने से युवावस्था की सुन्दरता जाती रहती है । हे मुनीश्वर ! जरा के आने से शरीर कृश हो जाता है, जैसे वर्षाकाल में नदी बढ़ जाती है वैसे ही जरावस्था में तृष्णा बढ़ जाती है और जिस पदार्थ की तृष्णा करता है वह पदार्थ भी दुःखरूप है, इसलिये तृष्णा करके आप ही दुःख पाता है । हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी समुद्र में चित्तरूपी बेड़ा पड़ा है और रागद्वेष-रूपी मच्छों से कभी ऊर्ध्व को जाता है और कभी नीचे आता है, स्थिर कदाचित् नहीं रहता । हे मुनीश्वर ! कामरूपी वृक्ष में तृष्णारूप लता और विषयरूपी फूल हैं, जब जीवरूपी भँवरा उसके ऊपर बैठता है तब विषय रूपी बेलि से मृतक हो जाता है । हे मुनीश्वर ! तृष्णारूपी एक बड़ी नदी है उसमें रागद्वेषादिक बड़े-बड़े मच्छ रहते हैं । उसी नदी में पड़े हुए जीव दुःख पाते हैं । जिस संसार की इच्छा करता है वह नाशरूप है । हे मुनीश्वर ! तरंगों के समूह के रणरूपी समुद्र को तरजानेवाले को भी मैं शूर नहीं मानता,परन्तु जो इन्द्रियरूपी समुद्र में मनोवृत्तिरूपी तरंग उठते हैं उस समुद्र के तरजानेवाले को मैं शूर मानता हूँ ऐसी क्रिया अज्ञानी जीव आरंभ करते हैं कि जिसके परिणाम में दुःख हो । जिसके परिणाम में सुख है उसका आरम्भ वे नहीं करते और काम के अर्थ की धारण करते हैं । ऐसे आरम्भ से शरीर की शान्ति के पीछे भी सुख की प्राप्ति नहीं होती । वे कामना करके सदा जलते रहते हैं । जो अनात्मपदार्थ की तृष्णा करते हैं उनको शान्ति कैसे प्राप्त हो ? हे मुनीश्वर ! तृष्णा रूपी नदी में बड़ा प्रवाह है; उसके किनारे पर वैराग्य और सन्तोष दो वृक्ष खड़े हैं, सो तृष्णा नदीके प्रवाह से दोनों का नाश होता है । हे

मुनीश्वर ! तृष्णा बड़ी चंचल है, किसी को स्थिर नहीं होने देती । मोहरूपी एक वृक्ष है उसके चारों ओर स्त्रीरूपी बेलि है सो विषसे पूर्ण है । उस पर चित्तरूपी भँवरा आ बैठता है तब स्पर्शमात्र से नाश होता है । जैसे मोर का पुच्छ हिलता है वैसे ही अज्ञानी का चित्त चंचल रहता है, इसलिए वह मनुष्य पशु के समान है । जैसे पशु दिन को जंगल में जा आहार करते और चलते फिरते हैं और रात्रि को घर में आय खूँटे से बाँधे जाते हैं वैसे ही मूर्ख मनुष्य भी दिन को घर छोड़के व्यवहार में फिरते हैं और रात्रि को आ अपने घर में स्थिर होते हैं ।पर इससे परमार्थ की कुछ सिद्धि नहीं होती, वे अपना जीवन वृथा गँवाते हैं । बाल्यावस्था में तो शून्य रहता है और युवावस्था में काम से उन्मत्त होता है । उस काम से चित्तरूपी उन्मत्तहस्ती स्त्रीरूपी कन्दरा में जा स्थिर होता है, पर वह भी क्षणभंगुर है । फिर वृद्धावस्था आती है उससे शरीर कृश हो जाता है । जैसे बरफ से कमल जर्जरीभाव को प्राप्त होता है वैसे ही जरा से शरीर जर्जरीभाव को प्राप्त होता है और सब अंग क्षीण हो जाते हैं; पर एक तृष्णा बढ़ जाती है । हे मुनीश्वर ! यह जीव मनुष्यरूपी पर्वत पर आ आकाश के फलरूपी जगत् के पदार्थ की इच्छा करता है सो नीचे गिर राग-द्वेषरूपी कण्टक के वृक्ष में जा पड़ेगा । हे मुनीश्वर ! जितने जगत् के पदार्थ हैं वह सब आकाश के फूल की नाईं नाशवान् हैं । इनमें आस्था करनी मूर्खता है ।यह तो शब्दमात्र हैं । इनसे अर्थ कुछ सिद्ध नहीं होता । जो ज्ञानवान् पुरुष हैं उनको विषय भोग की इच्छा नहीं रहती, क्योंकि आत्मा के प्रकाश से वे इनको मिथ्या जानते हैं । हे मुनीश्वर ! ऐसे ज्ञानवान् दुर्विज्ञेय पुरुष हमको तो स्वप्न में भी नहीं भासते । ऐसे विरक्तात्मा दुर्लभ है कि जिनको भोग की इच्छा नहीं और सर्वदा ब्रह्म की स्थित में भासते हैं । ऐसे पुरुषों को संसार की कुछ इच्छा नहीं रहती, क्योंकि यह पदार्थ नाशरूप है हे मुनीश्वर ! जैसे पर्वत को जिस ओर देखिये पत्थरों से, पृथ्वी मृत्तिका से, वृक्ष काष्ठ से और समुद्र जल से पूर्ण दृष्टि आते हैं वैसे ही शरीर अस्थि माँस से पूर्ण भासता है । ये सब पदार्थ पञ्चतत्व से पूर्ण और नाशरूप हैं ऐसा जानकार ज्ञानी किसी की इच्छा नहीं करता । हे मुनीश्वर ! यह जगत् सब नाशरूप हैं, देखते ही देखते नष्ट हो जाता है, मैं उसमें किस का आश्रय करके सुख पाऊँ ? जब युगों की सहस्त्र चौकड़ी व्यतीत होती है तब ब्रह्मा का दिन होता है । उस दिन के क्षय होने से जगत का प्रलय होता है और ब्रह्मा भी काल पाकर नष्ट हो जाता है । ब्रह्मा भी जितने हो गये हैं उनकी संख्या नहीं हो सकती असंख्य ब्रह्मा नष्ट हो गये हैं तो हम सरीखों की क्या वार्ता है । हम किसी भोग की वासना नहीं करते क्योंकि सब चलरूप हैं, स्थिर रहने के नहीं, सब नाशरूप हैं, इसलिये इनकी आस्था मूर्ख करते हैं, इनके साथ हमको कुछ प्रयोजन नहीं । जैसे मरुस्थल को देख मृग जलपान करने को दौड़ता और शान्ति नहीं पाता वैसे ही मूर्ख जीव जगत् के पदार्थों को सत्य मानकर तृष्णा करता है, परन्तु शान्ति नहीं पाता क्योंकि सब असाररूप हैं । स्त्री, पुत्र

और कलत्र जब तक शरीर नष्ट नहीं होता तभी तक भासते हैं,जब शरीर नष्ट हो जायगा तो जाना न जावेगा कि कहाँ गये और कहाँ से आये थे । जैसे तेल और बत्ती से दीपक बड़ा प्रकाशवान् दृष्टि आता है, जब बुझ जाता है तब जानानहीं जाता कि कहाँ गया वैसे ही बत्तीरूप बान्धव हैं और उसमें स्नेहरूपी तेल है उससे जो शरीर भासता है सो प्रकाश है । जब शरीररूपी दीपक का प्रकाश बुझ जाता है तब जाना नहीं जाता कि कहाँ गया । हे मुनीश्वर ! बन्धु का मिलाप ऐसा है जैसे कोई तीर्थ यात्रा को संग चला जाता हो सो सब एक क्षण वृक्ष की छाया के नीचे बैठते हैं फिर न्यारे न्यारे हो जाते हैं । जैसे उस यात्रा में स्नेह करना मूर्खता है वैसे ही इनमें भी स्नेह करना मूर्खता है । हे मुनीश्वर ! अहं ममता की रस्सी के साथ बाँधे हुए घटीयन्त्र की नाईं सब जीव भ्रमते फिरते हैं, उनको शान्ति कदाचित नहीं होती । यह देखने मात्र तो चेतन दृष्टि आता है, परन्तु पशु और बन्दर इन से श्रेष्ठ हैं जिनकी सम्मत देह और इन्द्रियों के साथ बँधी हुई है और आगमापायी हैं उनको आत्मपद की प्राप्ति कठिन है । जैसे पवन से वृक्ष के पात टूट के उड़ जाते हैं फिर उनको वृक्ष के साथ लगना कठिन है वैसे ही जो देहादिक से बाँधे हुए हैं उनको आत्मपद का पाना कठिन है । हे मुनीश्वर ! जब आत्मपद से विमुख होता है तब जगत् को सत्य देखता है और जब आत्मपद की ओर आता है तब संसार इसको बड़ा विरस लगता है । ऐसा पदार्थ जगत् में कोई नहीं जो स्थिर रहे, जो कुछ पदार्थ हैं सो नाश को प्राप्त होते हैं । इससे मैं किसकी आस्था करूँ और किसका आश्रय करूँ सब तो नाशवन्त भासते हैं ? वह पदार्थ कहिये जिसका नाश न हो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे सर्वपदार्थाभाववर्णनन्नाम द्वाविंशतितमस्सर्गः ॥२२॥

अनुक्रम

जगद्विपर्ययवर्णन

श्रीरामजी बोले कि हे मुनीश्वर ! जितना जंगम जगत् दीखता है वह सब नाशरूप है, कुछ भी स्थिर न रहेगा । जो खाईं थी वह जल से पूर्ण हो गई है और जो बड़े जल से भरे हुए समुद्र दीखते थे वे खाईंरूप हो गये; जो सुन्दर बगीचे थे वे आकाश की नाईं शून्य हो गये और जो शून्य स्थान थे वे सुन्दर वृक्ष होकर वन में दृष्टि आते हैं । जहाँ बस्ती थी वहाँ उजाड़ हो गई और जहाँ उजाड़ थी वहाँ वहाँ बस्ती हो गई । जहाँ गढ़े थे वहाँ पर्वत हो गये और जहाँ बड़े पर्वत थे वहाँ समान पृथ्वी हो गई । हे मुनीश्वर ! इस प्रकार पदार्थ देखते देखते विपर्यय हो जाते हैं , स्थिर नहीं रहते तो फिर मैं किसका आश्रय करूँ और किसके पाने का यत्न करूँ ? ये पदार्थ तो सब नाशरूप हैं । जो बड़े ऐश्वर्य से सम्पन्न और बड़े कर्तव्य करते और बड़े वीर्यवान् तेजवान् हुए हैं वे भी मरणमात्र हो गये हैं तो हम सरीखों की क्या वार्त्ता है ? सब नाश होते है तो हमें भी घड़ी पल में चला जाना है । हे मुनीश्वर ! ये पदार्थ बड़े चञ्चलरूप हैं; एकरस कदाचित नहीं रहते । एक क्षण में कुछ हो जाते और दूसरे क्षण में कुछ हो जाते हैं । एक क्षण में दरिद्री हो जाते और दूसरे क्षण में सम्पदावान हो जाते हैं । एक क्षण में जीते दृष्टि आते हैं, और दूसरे क्षण में मर जाते हैं और एक क्षण में फिर जी उठते हैं । इस संसार की स्थिरता कभी नहीं होती । ज्ञानवान् इसकी आस्था नहीं करते । एक क्षण में समुद्र के प्रवाह के ठिकाने मरुस्थल हो जाते हैं और मरुस्थल में जल के प्रवाह हो जाते हैं । हे मुनीश्वर ! इस जगत् का आभास स्थिर नहीं रहता । जैसे बालक का चित्त स्थिर नहीं रहता वैसे ही जगत् का पदार्थ एक भी स्थिर नहीं रहता । जैसे नट नाना प्रकार के स्वाँग धरता है वैसे ही जगत् के पदार्थ और लक्ष्मी एकरस नहीं रहती । कभी पुरुष स्त्री हो जाता और कभी स्त्री पुरुष हो जाती है, कभी मनुष्य पशु हो जाता और कभी पशु मनुष्य हो जाता है, स्थावर का जंगम हो जाता है और जंगम का स्थावर हो जाता है, मनुष्य का देवता हो जाता और देवता का मनुष्य हो जाता है । इसी प्रकार घटी यन्त्र की नाईं जगत् की लक्ष्मी स्थिर नहीं रहती; कभी ऊर्ध्व को जाती है और कभी अधः को जाती है, स्थिर कभी नहीं रहती, सदा भटकती रहती है । हे मुनीश्वर ! जितने पदार्थ दृष्टि आते हैं वे सब नष्ट हो जावेंगे किसी भाँति स्थिर न रहेंगे । ये सब नदियाँ बड़वाग्नि में लय हो जावेंगी और जितने पदार्थ हैं वे सब अभावरूपी बड़वाग्नि को प्राप्त होंगे । बड़े बड़े बलिष्ठ भी मेरे देखते ही देखते लीन हो गये हैं जो बड़े बड़े सुन्दर स्थान थे वे शून्य हो गये और सुन्दर ताल और बगीचे जो मनुष्यों से परिपूर्ण थे शून्य हो गये । मरुस्थल की भूमि सुन्दर हो गई और घट के पट हो गये हैं । वर के शाप हो जाते हैं और शाप के वर हो जाते हैं । इसी प्रकार हे विप्र ! जो जगत् दृष्टि आता है वह कभी सम्पत्तिमान् और कभी

आपत्तिमान् दृष्टि में आता है और महाचपल है । हे मुनीश्वर ! ऐसे सब अस्थिरूप पदार्थों का विचार बिना मैं कैसे आश्रय करूँ और किसकी इच्छा करुँ सब तो नाशरूप हैं ? ये जो सूर्य प्रकाश युक्त दृष्टि आते हैं वे भी अन्धकार रूप हो जावेंगे । अमृत से पूर्ण चन्द्रमा भी शून्य हो जायगा और सुमेरु आदिक पर्वत, सब लोक, मनुष्य, देवता, यक्ष और राक्षस सब नष्ट होंगे । इससे हे मुनीश्वर ! और किसी का क्या कहना है ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र जगत् के ईश्वर भी शून्य हो जायँगे । जो कुछ जगत् दृष्टि आता है और स्त्री, पुत्र, बान्धव, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज से युक्त नाना प्रकार के जो जीव भासते हैं वे सब नाशरूप हैं, फिर मैं किस पदार्थ का आश्रय करूँ और किसकी इच्छा करूँ ? हे मुनीश्वर ! जो पुरुष दीर्घदर्शी है उसको तो सब पदार्थ विरस हो गये, वह किसी पदार्थ की इच्छा नहीं करता, क्योंकि उसे तो सब पदार्थ नाशरूप भासते हैं और वह अपनी आयु को बिजली के चमत्कारवत् देखता है । जिसको अपनी आयु की प्रतीति होती है सो किसी की इच्छा नहीं करता । जैसे किसी को बलिदान के अर्थ पालते हैं तो वह खाने पीने और भोगने की इच्छा नहीं करता वैसे ही जिसको अपना मरना सम्मुख भासता है उसको भी किसी पदार्थ की इच्छा नहीं रहती । ये सब पदार्थ आप ही नाशरूप हैं तो हम किसका आश्रय करके सुखी हों । जैसे कोई पुरुष समुद्र में मच्छ का आश्रय करके कहे कि मैं इस पर बैठकर समुद्र के पार जाऊँगा और सुखी होऊँगा तो वह मूर्खता से डूब ही मरेगा वैसे ही जिस पुरुष ने इन पदार्थों का आश्रय लिया है और उन्हें अपने सुख के निमित्त जानता है वह नष्ट होगा । हे मुनीश्वर ! जो पुरुष जगत् को चितवता रहता है उसको यह जगत् रमणीय भासता है और जो रमणीय जानकर नाना प्रकार के कर्म करता है और नाना प्रकार के संकल्प करके जगत् में भटकता है, उसी को यह भटकाता है । जैसे पवन से धूलि कभी ऊँचे और कभी नीचे आती स्थिर नहीं रहती वैसे ही यह जीव भटकता फिरता है स्थिर कभी नहीं रहता और जिस पदार्थ की इच्छा करता है वह सब काल का ग्रास है ।ईन्धनरूपी जगत् वनमें कालरूपी अग्नि लगी है उसने सबको ग्रास लिया है । जो इन पदार्थों की इच्छा करते हैं वे महामूर्ख हैं । जिनको आत्मविचार की प्राप्ति है उनको यह जगत् भ्रमरूप भासता है और जिसको आत्मविचार की प्राप्ति नहीं है उसको यह जगत् रमणीय भासता है । जगत् तो देखते ही देखते नष्ट हो जाता है । इस स्वप्नपुरी की नाईं संसार की मैं कैसे इच्छा करूँ यह तो दुःख का निमित्त है ? जैसे विष मिली मिठाई खानेवाले मृत्यु पाते हैं वैसे ही विषय भोगनेवाले नष्ट होते हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे जगद्विपर्ययवर्णनन्नाम त्रयोविंशतितमस्सर्गः ॥२३॥

अनुक्रम

सर्वान्तप्रतिपादन

श्रीरामजी बोले हे मुनीश्वर ! इस संसार में भोगरूपी अग्नि लगी है उससे सब जलते हैं । जैसे ताल में हाथी के पाँव से कमल नष्ट हो जाता है वैसे ही काम क्रोध और दुराचार से शुभ गुण नष्ट हो जाते हैं । जैसे भटकटैया के पत्ते और फल में काँटे हो जाते हैं वैसे ही विषयों को वासनारूपी कण्टक आ लगते हैं । हे मुनीश्वर ! यह सब जगत् नाशरूप है, कोई पदार्थ स्थिर नहीं । वासनारूपी जल और इन्द्रियरूपी गाँठ है उसमें पुरुष काल से ग्रसा है वह बड़े दुःख पावेगा । हे मुनीश्वर ! वासनारूपी !सूत में जीव रूपी मोती पिरोये हुए हैं और मनरूपी नट आय पिरोय कर चैतन्यरूपी आत्मा के गले में डालता है । जब वासनारूपी तागा टूट पड़ता है तब यह सब भ्रम भी निवृत हो जाता है । हे मुनीश्वर ! इस जीव को भोग की इच्छा ही बन्धन का कारण है उसी से यह भटकता है और शान्ति नहीं पाता । इससे मुझको किसी भोग की इच्छा नहीं न राज्य की ही इच्छा है और न घर की न वन की इच्छा है, न मरने का दुःख मानता हूँ और न जीने का सुख मानता हूँ । मुझे किसी पदार्थ का सुख नहीं, सुख तो आत्मज्ञान से होता है, अन्यथा किसी पदार्थ से नहीं होता । जैसे सूर्य के उदय हुये बिना अन्धकार का नाश नहीं होता वैसे ही आत्मज्ञान के बिना संसार के दुःख का नाश नहीं होता । इससे आप वही उपाय कहिये जिससे मोह का नाश हो और मैं सुखी होऊँ । हे मुनीश्वर ! भोग के भोगनेवाले अहंकार को मैंने त्याग दिया, फिर भोग इच्छा कैसे हो ? हे मुनीश्वर ! विषयरूप सर्पने जिसका स्पर्श किया उसका नाश हो जाता है । सर्प जिसको काटता है वह एक ही बेर उसको मार डालता है, पर विषयरूपी सर्प जिसको काटता है वह अनेक जन्म पर्यन्त मारता ही चला जाता है । इससे परम दुःख का कारण विषय भोग ही है और परम विष है । हे मुनीश्वर ! आरे से अंग का काटना और वज्र से शरीर का चूर्ण होना मैं सहूँगा परन्तु विषय का भोगना मुझसे किसी प्रकार सहा नहीं जाता । यह तो मुझको दुःखदायक ही दृष्टि आता है । इससे वही मुझ से कहिये जिससे मेरे हृदय से अज्ञानरूपी अन्धकार का नाश हो और जो न कहोगे तो मैं अपनी छाती पर धैर्यरूपी शिला धरके बैठा रहूँगा, परन्तु भोग की इच्छा न करूँगा । हे मुनीश्वर ! जितने पदार्थ हैं वे सब नाशरूप हैं । जैसे बिजली का चमत्कार होके छिप जाता है और अञ्जलि में जल नहीं ठहरता वैसे ही विषयभोग और आयु नष्ट हो जाते हैं-ठहरते नहीं । जैसे काँटे से मछली दुःख पाती है वैसे ही भोग की तृष्णा से जीव दुःख पाते हैं । इससे मुझे किसी पदार्थ की इच्छा नहीं । जैसे कोई मरीचिका के जल को सत्य जान जलपान की इच्छा करे और दौड़े पर जल नहीं पाता है इससे मैं किसी पदार्थ की इच्छा नहीं करता हूँ ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे सर्वान्तप्रतिपादन्नाम चतुर्विंशतितमस्सर्गः ॥२४॥

अनुक्रम

वैराग्यप्रयोजनवर्णन

श्रीरामजी बोले कि हे मुनीश्वर ! संसाररूपी गढ़े और मोहरूपी कीच में मूर्ख का मन गिर जाता है । उससे वह दुःख ही पाता है शान्तिवान् कभी नहीं होता । जब जरावस्था आती है तब जैसे पुरातन वृक्ष के पत्र पवन से हिलते हैं वैसे ही अंग हिलते हैं और तृष्णा बढ़ जाती है । जैसे नीम का वृक्ष ज्यों-ज्यों वृद्ध होता है त्यों-त्यों कटुता बढ़ती है तैसे ही तृष्णा बढ़ती है । हे मुनीश्वर ! जिस पुरुष ने देह इन्द्रियादिकों का आश्रय अपने सुख निमित्त लिया है वह मूर्ख संसाररूपी अन्धकूप में गिरता है और निकल नहीं सकता । अज्ञानी का चित्त भोग का त्याग कदाचित नहीं करता, हे मुनीश्वर ! जगत् के पदार्थों से मेरी बुद्धि मलीन हो गई है । जैसे वर्षा कालमें नदी मलीन होती है और जैसे मार्गशीर्ष मास में मञ्जरी सूख जाती है वैसे ही जगत् की शोभा देखते देखते मेरी बुद्धि विरस हो गई है । जैसे जगत् का पदार्थ मूर्ख को रमणीय भासता है और जैसे पानी का गढ़ा तृण से आच्छादित होता है और मृग का बालक उस तृण को रमणीय जानकर खाने जाता है तो गिर जाता है वैसे ही यह मूर्ख जीव भोगों को रमणीय जान भोगों में गिर जाता है फिर महादुःख पाता है । हे मुनीश्वर ! जगत् के पदार्थों से मेरी बुद्धि चञ्चल हो गई है,इससे वही उपाय कहिये जिससे मेरी बुद्धि पर्वत की नाईं निश्चल हो और परमानन्द जो निर्भय निराकार है और जिसके पाने से किसी पद की इच्छा नहीं रहती उसे पाऊँ । हे मुनीश्वर ऐसे पद से मेरी बुद्धि शून्य है इससे मैं शान्तिमान् नहीं होता । यह संसार और संसार के कर्म मोहरूप हैं, इसमें पड़े हुए शान्ति नहीं पाते । जनकादिक शान्तिमान् संसार में रहे हुए कमल की नाईं निर्लेप रहते हैं । उनकी क्या समझ है कृपा करके कहिए और आप ऐसे सन्तजन विषय भोगते दृष्टि आते हैं और जगत् की सब चेष्टा करते हैं पर निर्लेप कैसे रहते हैं वह युक्ति कहिये । यह बुद्धि जैसे ताल में हाथी प्रवेश करता है और पानी मलीन हो जाता है वैसे ही मोह से मलीन हो जाती है । इससे वही उपाय कहिये जिससे बुद्धि निर्मल हो ।यह बुद्धि स्थिर कभी नहीं रहती । जैसे कुल्हाड़े का कटा वृक्ष मूल से स्थिर नहीं होता वैसे ही वासना से कटी बुद्धि स्थिर नहीं रहती । हे मुनीश्वर ! संसाररूपी विसूचिका मुझको लगी है इससे वही उपाय कहिये जिससे दृश्य का नाश हो - इसने मुझको बड़ा दुःख दिया है । आत्मज्ञान कब प्रकाश होगा जिसके उदय से मोहरूप अन्धकार का नाश हो ? हे मुनीश्वर ! जैसे बादल से चन्द्रमा आच्छादित हो जाता है वैसे ही बुद्धि की मलिनता से मैं आच्छादित हुआ हूँ । इससे वही उपाय कहिये जिससे आवरण दूर हो और आत्मानन्द जो नित्य है प्राप्त हो । इसके पाने से फिर कुछ पाने की आवश्यकता नहीं रहती और इससे सम्पूर्ण दुःख नष्ट हो जाते हैं । अन्तःकरण शीतल हो जाता है । ऐसे पद की

प्राप्ति का उपाय मुझसे कहिये । हे मुनीश्वर ! आत्मज्ञानरूपी चन्द्रमा की मुझको इच्छा है; जिसके प्रकाश से बुद्धिरूपी कमलिनी खिल जाती है और जिसकी अमृतरूपी किरणों से वृत्ति तृप्त होती है । हे मुनीश्वर ! अब मुझको गृह में रहने की इच्छा नहीं और वन में जाने की भी इच्छा नहीं । मुझको तो उसी पद की इच्छा है जिससे पाकर अन्तः करण शान्त हो जाय ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे वैराग्यप्रयोजनवर्णनन्नाम पञ्चविंशतितमस्सर्गः ॥२५॥

अनुक्रम

अनन्यत्यागदर्शन

श्रीरामजी बोले कि हे मुनीश्वर ! जो जीने की आस्था करते हैं वे मूर्ख हैं । जैसे कमलपत्र पर जल की बूँद नहीं ठहरती वैसे ही आयु भी क्षणभंगुर है । जैसे वर्षाकाल में दादुर बोलते हैं और उनका चञ्चल कंठ सदा फड़कता रहता है वैसे ही आयु क्षण में चञ्चल हो जाती है । जैसे शिवजी के मस्तक में चन्द्रमा की रेखा छोटी सी है वैसे ही यह शरीर है । हे मुनीश्वर ! जिसको इसमें आस्था है वह महामूर्ख है-यह तो काल का ग्रास है । जैसे बिल्ली चूहे को पकड़ लेती है वैसे ही सबको काल पकड़ लेता है । जैसे बिल्ली को सँभलने नहीं देती वैसे ही काल सबको अचानक ग्रहण कर लेता है । और को नहीं भासता । हे मुनीश्वर ! जब अज्ञान रूपी मेघ गर्जता है तब लोभरूपी मोर प्रसन्न होकर नृत्य करता है । जब अज्ञानरूपी मेघ वर्षा करता है तब दुःखरूपी मञ्जरी बढ़ने लगती है, लोभरूपी बिजली क्षण-क्षण में उत्पन्न होकर नष्ट हो जाती है और तृष्णारूपी जाल में फँसे हुए जीवरूपी पक्षी पड़े दुःख पाते हैं-शान्ति को प्राप्ति नहीं होती । हे मुनीश्वर ! यह जगत्‌रूपी बड़ा रोग लगा है उसके निवारण करने का कौन सा उपाय है ? जो पाने योग्य है और जिससे भ्रमरूपी रोग निवृत्त हो वह उपाय कहिये । यह जगत् मूर्ख को रमणीय दीखता है । ऐसे पदार्थ पृथ्वी, आकाश, देवलोक और पाताल में भी नहीं जो ज्ञानवान् को रमणीय दीखें । ज्ञानवान् को सब भ्रमरूपी भासता है और अज्ञानी जगत् में आस्था करता है । हे मुनीश्वर ! चन्द्रमा में जो कलंक है उससे सुन्दरता नहीं रहती । जब कलंक दूर हो जाय तब सुन्दर लगे वैसे ही मेरे चित्तरूपी चन्द्रमा में कामरूपी कलंक लगा है इससे वह उज्ज्वल नहीं भासता । आप वही उपाय कहिये जिससे कलंक दूर हो । हे मुनीश्वर ! यह चित्त बहुत चञ्चल हैं, स्थिर कदाचित् नहीं होता । जैसे अग्नि में डाल दिया पारा उड़ जाता है वैसे चित्त भी स्थिर नहीं होता, विषय की ओर सदा धावता रहता है । इससे आप वही कहिये जिससे चित्त स्थिर हो । संसाररूपी वन में भोगरूपी सर्प रहते हैं और जीव को काटते हैं उनसे बचने का उपाय कहिये । जितनी क्रिया हैं वे राग-द्वेष के साथ मिली हुई हैं, इससे वही उपाय कहिये जिससे रागद्वेष का प्रवेश न हो और संसार समुद्र में पड़के तृष्णारूपी छल का स्पर्श न हो । और ऐसा उपाय भी कहिये जिससे राग- द्वेष का स्पर्श न हो । मन में जो मनरूपी सत्ता है वह युक्ति से दूर होती है, अन्यथा दूर नहीं होती । उसकी निवृत्ति के अर्थ आप मुझसे युक्ति कहिये और आगे जिसको जिस प्रकार निवृत्ति हुई है और जिस प्रकार आपके अन्तःकरण में शीतलता हुई वह कहिये । हे मुनीश्वर ! जैसे आप जानते हैं सो कहिये और जो आपने ही वह युक्ति नहीं पाई तब मैं तो कुछ नहीं जानता । मैं सब त्यागकर निरहंकार हो रहूँगा और जब तक वह युक्ति मुझको न प्राप्त होगी तब तक मैं भोजन जलपान और स्नानादिक क्रिया

और किसी सम्पदा और आपदा का कार्य न करूँगा, निरहंकार होऊँगा । यह न मेरी देह है, न मैं देह हूँ, सब त्याग के बैठा रहूँगा । जैसे कागज के ऊपर मूर्ति चित्रित होती है वैसे ही हो रहूँगा श्वास आते जाते आप ही क्षीण हो जायँगे । जैसे तेल बिना दीपक बुझ जाता है वैसे ही अनर्थवान् देह निर्वाण हो जायगा तब महाशान्ति पाऊँगा । इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज ! ऐसे कहकर रामजी चुप हो रहे। जैसे मेघ को देखके मोर शब्द करके चुप हो जाता है ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे अनन्यत्यागदर्शनन्नाम षड्विंशतितमस्सर्गः ॥२६॥

अनुक्रम

सिद्धसमाजवर्णन

इतना कहकर वाल्मीकिजी बोले हे पुत्र ! जब इस प्रकार रघुवंशरूपी आकाश के रामचन्द्र रूपी चन्द्रमा बोले तब सब मौन हो गये और सबके रोम खड़े हो गये. मानो रोम भी खड़े हो कर रामजी के वचन सुनते हैं और सभा में जितने बैठे थे वे सब निर्वासनारूपी अमृत के समुद्र में मग्न हो गये । वशिष्ठ, वामदेव, विश्वामित्र आदि जो मुनीश्वर थे और दृष्टि आदिक मंत्री, राजा दशरथ और मण्डलेश्वर, चाकर, नौकर और माता कौशल्या आदिक सब मौन हो गये - अर्थात् अचल हो गये । पिंजड़े में जो तोते और बगीचे में पशु आदि थे, जो पक्षी आलय में बैठे थे वे भी सुन कर मौन हो गये । आकाश के पक्षीजो निकट थे वे भी स्थिर हो गये और आकाश में देव, सिद्ध, गन्धर्व, विद्याधर और किन्नर भी आके सुनने और फूलों की वर्षा करने तथा सब धन्य-धन्य शब्द करने लगे । उस समय फूलों की ऐसी वर्षा हुई मानों बरफ की वर्षा होती है, और क्षीरसमुद्र के तरंग उछलते आते थे मानो मोती की माला की वृष्टि होने लगी । जैसे माखन के पिंड उड़ते हों इस प्रकार आधी घड़ी पर्यन्त फूलों की वर्षा हुई और बड़ी सुगन्ध फैली । फूलों पर भँवरे फिरने लगे और बड़ा विलास उस काल में हुआ । सब "नमोनमः" शब्द करने लगे और देव बोले हे कमलनयन, रघुवंशी ! आकाश में चन्द्रमारूप तुम धन्य हो तुमने बड़े श्रेष्ठ स्थान देखे हैं और बहुत प्रकार के वचन सुने हैं ।जैसे तुमने वचन कहे हैं वैसे हमने कभी नहीं सुने । यह वचन सुनके हमारा जो देवतों का अभिमान था सो सब निवृत्त हो गया और अमृतरूपी वचन सुनकर हमारी बुद्धि पूर्ण हो गई । हे रामजी ! जैसे वचन तुमने कहे हैं ऐसे बृहस्पति भी नहीं कह सकते । तुम्हारे वचन परमानन्द के करनेवाले हैं इससे तुम धन्य हो ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे सिद्धसमाजवर्णनन्नाम सप्तविंशतितमस्सर्गः ॥२७॥

अनुक्रम

मुनिसमाजवर्णन

वाल्मीकिजी बोले, हे भारद्वाज ! सिद्ध ऐसे वचन कहके विचारने लगे कि रघुवंश का कुल पूजने योग्य हैं, जिससे रामजी ने बड़े उदार वचन मुनीश्वर के सम्मुख कहे हैं । अब जो मुनीश्वर उत्तर देंगे वह भी सुनना चाहिये । जैसे फूल के ऊपर भँवरा स्थिर होता है वैसे ही व्यास, नारद, पुलह, पुलस्त्य आदि सब साधु सभा में स्थित हुए तब वशिष्ठ, विश्वामित्र आदि मुनीश्वर उठ खड़े हुए और उनकी पूजा करने लगे । पहिले राजा दशरथ ने पूजा की और फिर नाना प्रकार से सबने उनकी पूजा की और यथायोग्य आसन के ऊपर बैठे । उनमें नारदजी हाथ में बहुत सुन्दर वीणा लिये और श्याममूर्ति व्यासजी नानाप्रकार के रंग से रञ्जित वस्त्र पहिने हुए मानो तारागणों में महाश्यामघटा आई है विराजमान थे । ऐसे ही दुर्वासा, वामदेव, पुलह, पुलस्त्य, बृहस्पति के पिता अंगिरा, भृगु और मैं भी वहाँ था और ब्रह्मर्षि, राजर्षि, देवर्षि, देवता, मुनीश्वर सब आके उस सभा में स्थित हुए । किसी की बड़ी जटा, कोई मुकुट पहिने थे, किसी के कण्ठ में रत्न की माला और हाथ में कमण्डलु और मृगछाला, किसी के महासुन्दर वस्त्र, किसी की कटि पै कोपीन और किसी की कटिपै सुवर्ण की जंजीर थीं । ऐसे ऐसे बड़े तपस्वी जो वहाँ आके बैठे थे उनमें कोई राजसी और कोई सात्विक स्वभाव के थे और सब विद्वान् वेद के पढ़नेवाले प्राप्त हुए । कोई सूर्यवत्, कोई चन्द्रमावत् कोई तारावत् कोई रत्नवत् प्रकाशमान् और पुरुषार्थ पर यत्न करने वाले यथायोग्य आसन पर स्थित हुए । मोहनीमूर्ति और दीन स्वभाववाले रामजी भी हाथ जोड़ के सभा में बैठे और उनकी सब पूजा करने लगे कि हे रामजी ! तुम धन्य हो । नारद सबके सम्मुख कहने लगे कि हे रामजी ! तुमने बड़े विवेक और वैराग्य के वचन कहे जो सबको प्यारे लगे और सबके कल्याण करनेवाले और परम बोध के कारण हैं । हे रामजी ! तुम बड़े बुद्धिमान् और उदारात्मा दृष्टि आते हो और महा वाक्य का अर्थ तुमसे प्रकट होता है । ऐसे उज्ज्वल पात्र साधु और अनन्त तपस्वियों में कोई विरला होता है । जितने मनुष्य हैं वे सब पशु से दृष्टि आते हैं, क्योंकि जिसको संसार समुद्र के पार होने की इच्छा है और जो पुरुषार्थ पर यत्न करता है वही मनुष्य है । हे साधो ! वृक्ष तो बहुत होते हैं परन्तु चन्दन का वृक्ष कोई होता है वैसे ही शरीरधारी बहुत हैं परन्तु ऐसा विद्वान् कोई बिरला ही होता है और सब अस्थि माँस रुधिर के पुतले से मिले हुए भटकते फिरते हैं । जैसे तन्त्र की पुतली होती है वैसे ही अज्ञानी जीव है । हाथी तो बहुत हैं परन्तु बिरले के मस्तक से मोती निकलता है वैसे ही मनुष्य तो बहुत हैं; परन्तु पुरुषार्थ पर यत्न करनेवाला कोई बिरला ही होता है । जैसे वृक्ष बहुतेरे हैं परन्तु लवंग का वृक्ष कोई बिरला ही होता है वैसे ही मनुष्य बहुत हैं, परन्तु ऐसा कोई बिरला ही होता है । ऐसे

पात्र से थोड़ा अर्थ कहा भी बहुत हो जाता है । जैसे तेल की बूंद थोड़े ही जल में डालिये तो फैल जाती है वैसे ही थोड़े वचन तुम्हारे हिये में बहुत होते है । तुम्हारी बुद्धि बहुत विशेष है और दीपक सी प्रकाश वाली और बोध का परम पात्र है । कहनेमात्र से ही तुमको शीघ्र ज्ञान होवेगा और जो हमारे सामने तुमको ज्ञान न हो तो जानना कि हम सब मूर्ख बैठे हैं ।

इति श्रीयोगवाशिष्ठे वैराग्यप्रकरणे मुनिसमाजवर्णनन्नामाष्टाविंशतितमस्सर्गः ॥२८॥

अनुक्रम